

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

क्रम संख्या

१५३२५

काल नं०

४०१ १

ज० ५

खण्ड

दक्खिणी हिंदी

दक्षिणी हिंदी

बाबूराम सक्सेना

एम० ए०, डी० लिट्०

प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

१९५२

हिंदुस्तानी एकेडेमी

उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : २०००
मूल्य ३।

मुद्रक—टंडन प्रिंटिंग वर्क्स, ५-५, एलबर्ट रोड,
इलाहाबाद ।

डा० धीरेन्द्र वर्मा
को
सस्नेह समर्पित

प्रकाशकीय

इस पुस्तक में डा० बाबूराम सक्सेना के दक्खिनी हिंदी संबंधी तीन व्याख्यान संगृहीत हैं। पहला व्याख्यान १८ मार्च सन् १९४५ ई० को पढ़ा गया था। शेष दो पढ़े हुए मान लिये गये थे। ये ही तीनों व्याख्यान पुस्तक रूप में प्रकाशित हो रहे हैं।

हिंदी भाषा का विकास और उसमें साहित्य-रचना का कार्य केवल उत्तरी भारत में नहीं हुआ है। दक्षिणी भारत की मुसलमानी रियासतों, उनके शासकों एवं उनके दरबार के तथा अन्य साहित्यिकों का भी इसमें महत्वपूर्ण हाथ है। मुसलमान फ़कीरों, सैनिकों और राज्य-स्थापकों के द्वारा साहित्यिक हिंदी दक्षिण भारत में पहुँची थी और पंद्रहवीं शताब्दी तक उसमें उच्चकोटि का साहित्य निर्मित होने लगा था। प्रस्तुत पुस्तक इसी संबंध में किये गये अध्ययन का परिणाम है। भाषा-विज्ञान और साहित्य दोनों ही दृष्टियों से इसमें दक्खिनी हिंदी का सम्यक् एवं विद्वत्तापूर्ण अध्ययन उपस्थित किया गया है। परिशेष में दक्खिनी हिंदी के गद्य-पद्य साहित्य के नमूने भी दे दिये गये हैं जो उपयोगी होने के साथ-साथ रोचक भी हैं।

आशा है कि यह पुस्तक दक्खिनी हिंदी का महत्व समझने और तत्संबंधी अध्ययन का वैज्ञानिक एवं विस्तृत स्वरूप दिखाने में विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होगी।

धीरेन्द्र वर्मा

१६ दिसम्बर, १९५१ ई०

प्रस्तावना

कई साल हुए जब मेरा ध्यान दक्खिनी साहित्य पर गया था। जितना ही पढ़ा और समझा उतना ही अच्छा लगा। मित्रों से बातचीत में कहा कि इसको देवनागरी में लाकर हिन्दी संसार के सामने रखना चाहिए। मसल है “राह बतावे सो आगे चले।” डा० धीरेन्द्र वर्मा ने हिन्दुस्तानी एकेडेमी को प्रेरित किया कि मुझे दक्खिनी हिन्दी पर कुछ कहने को आमन्त्रित करे। परिणाम-स्वरूप ये व्याख्यान है।

दक्खिनी के अध्ययन के लिए मौ० नसीबुद्दीन हाशिमि की पुस्तक दक्किन में उर्दू परिचय पाने के लिए बड़ी अच्छी है। डा० सैयद मुहीउद्दीन फ़ादिरि ‘ज़ोर’ के उर्दू शहपारे, तज़किरह उर्दू मसू-तूतात और हिन्दुस्तानी लिस्सानियात बड़े काम के ग्रन्थ हैं। मौलवी डा० अब्दुलहक ने दक्खिनी की प्रशंसनीय और अथक सेवा की है। मैंने इन ग्रन्थकारों की रचनाओं से बहुत लाभ उठाया है और जहाँ-तहाँ इनके उद्धरण दिए हैं। इनका उपकार मानता हूँ।

स्थानीय विद्वानों में से डा० अब्दुल सत्तार सिद्दीकी ने मुझे आवश्यक परामर्श देकर कृतज्ञ किया है। मित्रवर डा० मुहम्मद हफ़ीज़ सैयद ने न केवल अपने सुख-सहेला के द्वारा बल्कि अन्य प्रकाशित और हस्तलिखित पुस्तकों को प्रदान कर मुझे इन व्याख्यानों को तैयार करने में बड़ी मदद दी। मैं उनका स्नेहपूर्ण उपकार हृदय से मानता हूँ।

यदि डा० धीरेन्द्र वर्मा का आग्रह न होता तो यह सामग्री कभी भी उपस्थित न हो पाती। इसी लिए ये व्याख्यान उन्हीं को समर्पित है।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी के सहायक मन्त्री श्री रामचंद्र टंडन ने जिस धैर्य से मुझसे काम निकाल लिया उसकी प्रशंसा मेरा जी ही कर सकता है। वह मेरे अनेक बन्धुवाद के पात्र हैं।

बाबूराम सक्सेना

विषय-सूची

	पृष्ठ
प्रकाशकीय	७
प्रस्तावना	६
पहला व्याख्यान—प्रवेशक	१३
दूसरा व्याख्यान—भाषा	३६
तीसरा व्याख्यान—शैली तथा साहित्य	६७
परिशेष—साहित्य के नमूने	६३
अनुक्रमणी	११३

ओरेम्

या मेघा देवगणाः पितरश्चोपासते

तया मामद्य मेघयाऽग्ने

मेघाविर्नं कुरु ।

प्रवेशक

हिन्दी शब्द का इस्तेमाल आज कई थोड़े बहुत विभिन्न अर्थों में किया जाता है। भाषा-विज्ञानी इस शब्द के अन्तर्गत, पंजाब के पूरबी प्रदेश में बोली जाने वाली बाँगाड़ू दक्खिनी हिन्दी से लेकर संयुक्त प्रान्त के पूरबी जिलों में नाम बोली जाने वाली अबधी पर्यन्त सभी बोलियों को समझते हैं और फ़ारसी लिपि में लिखी गई उर्दू और देवनागरी में की खड़ी बोली को इसी हिन्दी की एक शाखा हिन्दुस्तानी के दो साहित्यिक रूप मानते हैं। इसी प्रयोग के अनुकूल उर्दू को हिन्दी ही के भीतर एक विशेष शैली की हिन्दी समझा गया है। लेकिन आजकल हिन्दी शब्द को अधिकतर संस्कृत शब्दावली पर निर्भर एक विशेष शैली के लिए ही काम में लाया जाता है। जिस भाषा का विवेचन करने हम खड़े हुए हैं, उसके तीन नाम मिले हैं--हिन्दवी, हिन्दी और दक्खिनी। आरम्भ में ही इतना बता देना ज़रूरी है कि संस्कृत-निष्ठ शैली से यह भाषा कई बातों में अलग है।

हिन्दी और हिन्दुई या हिन्दवी शब्द एक ही अर्थ को जत-लाते हैं, यानी हिन्द या हिन्दु की भाषा। हिन्दी की नस्बत

हिन्दवी शब्द पुराना है। शुरु में इसका इस्तेमाल फ़ारसी से भेद दिखलाने के लिए इस देश भारत (हिन्द) की भाषा के ही लिए किया गया है। मुल्ला वजही अपने गद्य के ग्रन्थ सबरस (१६३५ ई०) में क्रिस्ता आरंभ करने समय लिखते हैं—

“हिन्दोस्तान में हिन्दी ज़बान सों इस लताफ़त इस छन्दा सों नज़्म और नख़ मिला कर गुलाकर यों नैं बोल्या”। (प० ११) शेख़ अशरफ़ अपने ग्रन्थ नौसरहार (१५०३ ई०) में कहते हैं—

“बाब़ां कैता हिन्दवी में। फ़िस्वए मक़तल शाह हुसै ॥
नज़्म लिखी सब मौजूं आन। यों मैं हिन्दवी कर आसान ॥
यक़ यक़ बोल य मौजूं आन। तक़रीर हिन्दवी सब बखान ॥
(मख़तूतात प० १८)

शाह बुर्हानुद्दीन जानम बीजापुरी इर्शादिनामह (१५८२ ई०) में हिन्दी बतलाते हैं—

यह सब बोलूँ हिन्दी बोल। पुन तूँ एन्हों सेती घोल ॥
ऐब न राखें हिन्दी बोल। मानी तो चख़ दीखें खोल ॥
हिन्दी बोलों किया बखान। जेकर परसाद था मुँक़ ग्यान ॥
(मख़तूतात प० १६)

जुनूनी मौ० रुम के भोज़जह का अनुवाद करते समय (१६६० ई० में) साफ़ साफ़ लिखते हैं—

मैं इसको दर हिन्दी ज़बॉं इस वास्ते कहने लगा।
जो फ़ारसी समझे नहीं समझे इसे खुश दिल होकर ॥
(मख़तूतात प० २२)

बुलबुल अपनी मसनवी चंदरबदन व महयार में कहते हैं—

हुआ बुलबुल उपर इस ते ज़रूरत।
दिखाना फ़र्स की हिन्दी में सरत ॥

ग्रन्थों के ऐसे नाम जैसे फ़िक्क़र हिन्दी और हिदायते हिन्दी या सुल्तान मुहम्मद कुली कुतुबशाह की एक नायिका का नाम 'हिन्दी छोरी' इस बात की गवाही देते हैं कि 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग 'भारत की' के अर्थ में किया गया है। ग्रन्थकारों के कहने से साफ़ साफ़ जान पड़ता है कि उनका ध्येय था कि जो बातें फ़ारसी भाषा में मौजूद हैं उन्हें इस देश की बाणी द्वारा प्रकट करें।

इसी हिन्दी हिन्दवी कां कुछ कवियों ने दक्खिनी नाम भी दिया है। वजही अपनी मसनवी कुतुब मुश्तरी में लिखते हैं--

दखिन में जो दखिनी मिठी बात का।

अदा नैं किया कोइ इस बात का ॥ (प० १६)

इब्न निशाती फूलबन (१६४६ ई०) में कहते हैं--

इसे हर कस के तई समझा कों तूँ बोल।

दखिनी के बातों सारथां को खोल ॥

रुतमा भी ख़ाविर नामह में लिखते हैं--

किया तजुमा दखिनि दौर दिलपज़ीर।

बोल्या मोज़ह यू कमालखां दबीर ॥

इस तरह इस भाषा के तीन ही नाम मिलते हैं, हिन्दवी हिन्दी और दक्खिनी।

आगे चलकर इस भाषा के व्योरेवार विवेचन से मालूम होगा कि इस भाषा का किसी भी दक्खिनी आर्य या द्राविड़ी भाषा से कोई

सम्बन्ध नहीं है; बल्कि परिवार-सम्बन्ध से

दक्खिनी नाम यह उत्तर भारत की आर्यभाषाओं में की है।

क्यों बड़ा ? तब फिर इसे दक्खिनी क्यों कहा गया ?

इसका जवाब उस समय के इतिहास से

मिलता है। दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के सैनिकों

ने १२६७ ई० में गुजरात जीता, और उसी के सेनापति मलिक काफूर ने १३०४ ई० में महाराष्ट्र पर, १३०७ ई० में आन्ध्र पर और १३०८ में कर्नाटक पर विजय पाई। ये सभी राज्य दिल्ली के सूबे समझे जाने लगे। यह क़ब्ज़ा कुछ ही साल कायम रह सका। दक्खिन को इतना महत्त्व दिया गया कि मुहम्मद तुग़लक ने दौलताबाद को राजधानी बनाया (१३२७ ई०)। फ़ीरोज़ तुग़लक के राज्यकाल में दक्खिन स्वतन्त्र हो गया, और हसन गंगो बहमनी ने (१३४७ ई० में) गुलबर्गा में बहमनी राज्य स्थापित कर दिया। गुजरात भी स्वतन्त्र हो गया। सन् १३३६ ई० में ही विजयनगर के हिन्दू राज्य की नींव पड़ गई थी और उसमें दक्खिन का बहुत सा भाग शामिल हो गया था। फ़ीरोज़ शाह के मरते समय (१३८८ में) दक्खिन पूरा का पूरा दिल्ली के क़ब्ज़े से निकल गया था और उसका कोई राजनीतिक सम्बन्ध न रह गया था। बहमनी राज्य के छिन्न-भिन्न होने पर, बीजापुर में आदिलशाही (१४६० ई०), गोलकुंडा में कुतुबशाही (१५१२ ई०), बीदर में बरीदशाही (१४८७ ई०), और बरार में इमादशाही तथा अहमदनगर में निज़ामशाही (१४६० ई०) सल्तनतें बनीं और बहुधा लड़ती भगड़ती रहीं, पर उत्तर भारत के राजनीतिक पंजे से असें तक बची रहीं।

ये राज्य दक्खिनी हिन्दी के कवियों और ग्रन्थकारों को बराबर आश्रय देते रहे और इनकी संरक्षा में १५वीं, १६वीं और १७ वीं ई० सदियों में अच्छे साहित्य का निर्माण हुआ। जब १७ वीं सदी के मध्य में औरंगज़ेब ने दक्खिन की ओर जाकर इन सल्तनतों को मटियामेट कर दिया तब कुछ काल तक दक्खिनी के साहित्यकार निराश्रय होकर तितर-बितर हो गए, पर रचनाएँ

होती रही। औरंगजेब ने १६५० ई० में औरंगाबाद को अपना केन्द्र बनाया और कुछ कवि यहाँ आ गए। औरंगजेब ने नसरती आदि एक दो को आदर सम्मान भी दिया। औरंगजेब के देहान्त (१७०७ ई०) के बाद दिल्ली के मुगल परिवार की अवनति होने लगी। वर्तमान निजाम राज्य के आदि पुरुष निजामुल्मुल्क आसफ़-जाह १७२३-४ ई० में स्थायीरूप से दक्खिन के सूबेदार होकर आ गए। तब से आज तक निजामराज्य हैदराबाद में कायम चला आ रहा है। इस खानदान के नरेशों ने प्राचीन दक्खिनी सुल्तानों की तरह बराबर दक्खिनी भाषा के साहित्यकारों को आश्रय और प्रोत्साहन दिया है।

हिन्दी या हिन्दवी का दक्खिनी कहलाना केवल इन दक्खिनी राज्यों के सम्बन्ध के कारण है। उन दिनों भी आज की तरह उस प्रदेश में आर्य भाषाओं में की मराठी और द्राविड़ भाषाओं में की तेलगू, तामिल और कन्नड़ बोली जाती थीं।

इतिहास से हमें पता चलता है कि मराठी भाषा में साहित्य का निर्माण पहले पहल यादववंशी मराठा क्षत्रिय राजाओं की संरक्षा में हुआ। इस वंश के प्रथम नरेश ने

मराठी पहले नासिक जिले के सिमनार नाम के स्थान
साहित्य पर और बाद को देवगिरि में अपनी राजधानी
कायम की। इस वंश ने करीब दो सौ साल

तक राज किया। यहाँ मराठी को दर्बारी (राज) भाषा माना गया और सरस्वती के पुजारियों को सम्मान मिला। इन्हीं के समय में महाराष्ट्र में दो धार्मिक सम्प्रदाय स्थापित हुए—महानुभाव पन्थ और बाकरी पन्थ। प्रथम के देवता कृष्ण और दत्तात्रेय थे, द्वितीय के हरि और विट्ठल। दोनों में सभी जातियों और मतों के जन

भरती हुए। महानुभाव पन्थ के प्रवर्तक चक्रधर थे, इन्होंने १२६३ से १२७१ ई० तक अपने मत का प्रचार किया और फिर बदरिकाश्रम चले गए। इनके वचनों का संग्रह इनके शिष्य महीन्द्रभट ने किया। यही वचन आचार्यसूत्र और सिद्धान्तसूत्रपाठ नाम से, इस सम्प्रदाय के मूल ग्रंथ हैं। महिमभट ने अपने गुरु की जीवनी भी लीलाचरित नाम की लिखी। ये तीनों पुस्तकें गद्य में हैं। चक्रधर के दूसरे चेले भास्कराचार्य ने शिशुपालवध नामक काव्य रचा। यादववंशी राजा इसी महानुभाव पन्थ के अनुयायी थे। देवगिरि में (१३२७ ई० में) मुस्लिम राज्य क्रायम हो जाने पर भी महानुभाव पन्थ थोड़े दिन चलता रहा। यह मूर्ति-पूजा के विरुद्ध था, इसलिए इसको मुसलमानों द्वारा उतनी हानि न पहुँचा जितनी अन्य मतों को। पर यही मुस्लिम संरक्षा इस सम्प्रदाय के लिए घातक सिद्ध हुई क्योंकि हिन्दू जनता इसी कारण उसे संवेह की दृष्टि से देखने लगी। इस सम्प्रदाय के खतम हो जाने का दूसरा कारण यह भी दिया जाता है कि इसके संचालकों ने अपने ग्रंथ ऐसी गुप्त लिपि में लिखे जिसका परिचय केवल विशेष दीक्षा-प्राप्त शिष्यों को था। कुछ भी हो, महानुभाव पन्थ के करीब बारह ग्रंथ ऐसे मिले हैं जो वार्करी पन्थ के आदि ग्रंथों से पहले के हैं।

महानुभाव पन्थ की निखत वार्करी पन्थ अधिक लोकाप्रिय साबित हुआ। इसके सन्तकवि मराठी भाषा के आदि कवि समझे जाते हैं। ज्ञानेश्वर को मराठी का आदिम साहित्यकार कहा जाता है। इन्होंने भावार्थदीपिका नाम की भगवद्गीता की व्याख्या १२६० ई० में बनाई। इसी को ज्ञानेश्वरी भी कहते हैं। इसके अलावा अमृतानुभव नाम का एक दर्शन-ग्रंथ और कुछ स्तोत्र और भजन भी इनकी कृति हैं। इतना काम इन्होंने २२ साल की अवस्था में कर

लिया और संसार छोड़ गए। मुकुन्दराज के ग्रंथ विवेकसिन्धु और परमामृत ज्ञानेश्वर के पहले के हैं। शैली आदि आन्तरिक परीक्षा से ये ग्रंथ ज्ञानेश्वरी के बाद के जंचते हैं पर संभावना यही है कि इनके वर्तमान संस्करण ही ज्ञानेश्वरी के बाद के हैं, मूल संस्करण पूर्वकालीन रहे होंगे। मुकुन्दराज के ये ग्रंथ ज्ञानेश्वर की कृतियों के बराबर लोकप्रिय न हो पाए। ज्ञानेश्वर के समकालीन ही, पर उनसे कुछ छोटे नामदेव थे। यह जाति के दर्जी (शिल्पी) थे। इनका देहान्त १३५० ई० में हुआ। कोई दो सौ साल बाद (१५४८ ई० में) एकनाथ का जन्म हुआ। इनका ग्रंथ एकनाथी भागवत बड़े महत्त्व का है और ज्ञानेश्वरी के बाद लोकप्रियता में इसी का नम्बर आता है। एकनाथ ने रामायण और महाभारत के आधार पर कुछ काव्य भी रचे। इस प्रकार दक्खिनी हिन्दी में किसी रचना के बनने के बहुत पहले मराठी में अच्छा खासा साहित्य मौजूद था।

द्राविड़ साहित्य तो और भी पुराना है। तिरुविलइयाडल पुराण (१२वीं सदी ई०) और तैवारं (७वीं सदी ई०) नाम के ग्रंथों में सुरक्षित अनुश्रुति के अनुसार पांड्य द्राविड़ देश में द्राविड़ संग होते थे। तीन संगों का साहित्य अस्तित्व बताया जाता है। प्रथम संग का स्थान मदुरा था और स्थितिकाल ४४०० वर्ष। इसमें अगस्त्य, शिव आदि सदस्यों की संख्या ५४६ और ग्रंथकारों की ४४४६ थी। द्वितीय संग का स्थान कवाटपुरं था, इम्न नगर का उल्लेख वाल्मीकि की रामायण में भी मिलता है। इस संग में ५६ सदस्य थे और ३७०० कवि और ग्रंथकार। इसका स्थितिकाल ३७०० वर्ष का था। तीसरे संग में ४६ सदस्य और

४४६ ग्रंथकार थे। इसका स्थितिकाल १८५० साल था और स्थान उत्तर मदुरा (वर्तमान मदुरा) था।

उपर दी गई संख्याओं में स्पष्ट ही कृत्रिमता और अत्युक्ति है और पुराण के रचयिता की कपोल कल्पना जान पड़ती है। प्रथम संग का कोई ग्रन्थ नहीं मिलता। उपलब्ध परिपाडल बहुत करके तीसरे संग का है। तीसरे संग के कवि नक्कीरर ई० दूसरी सदी के समझे जाते हैं। कपिलर के बारे में विद्वानों का मत है कि यह ई० पहली सदी के उत्तरार्ध और दूसरी के पूर्वार्ध में हुए। तैवारं के रचयिता अप्पर स्वाभिगळ ने लिखा है कि दारुमि नाम के एक कवि ने संग से सम्मान और पुरस्कार पाया था।

द्राविड़ शब्द संग संस्कृत के संघ शब्द का रूपान्तर है। उत्तर भारत में बौद्ध और जैन संघों का अस्तित्व बहुत पहले से था। दक्खिन में वज्रनन्दि नाम के एक जैन साधु ने ४७० ई० में एक द्राविड़ संघ की स्थापना की। यह धार्मिक था। सम्भव है कि साहित्यिक संगों की कल्पना को इस धार्मिक संघ से बल मिला हो। संगों के अस्तित्व में अविश्वास रख कर भी इतना मानना पड़ता है कि तामिल भाषा का साहित्य ईसा की प्रारम्भिक सदियों तक का मिलता है। प्राचीन ग्रंथों की भाषा बाद की तामिल से बहुत पुरानी और भिन्न है। अनुमान है कि तामिल का प्राचीन युग ५ वीं सदी ई० में समाप्त हो गया और छठी सदी से नवयुग शुरू हुआ। तामिल में केवल धार्मिक ग्रन्थ ही नहीं हैं। मयिमेखलड़ और कुंडलकेशि नाम के दो महाकाव्य भी हैं जो प्राचीनता में संग काल के माने जाते हैं।

कन्नड़ भाषा का जो सब से पुराना ग्रन्थ मिलता है वह है नृपतुङ्ग (अमोघवर्ष) का बनाया हुआ अलंकार-ग्रन्थ कविराजमार्ग।

राष्ट्र कूट नरेश नृपतुङ्ग का समय ई० ८१५-८७७ निर्धारित किया गया है। इन्होंने अपने ग्रन्थ में विमल, उदय, नागार्जुन, जय-बन्धु और दुर्विनीत नाम के सर्वोत्तम गद्य लेखकों और श्रीविजय, कबीरवर, पंडित, चन्द्र और लोकपाल आदि सर्वोत्तम कवियों का उल्लेख किया है। अवन्तिसुन्दरीकथा के अनुसार भारवि, दुर्विनीत के दर्बार में गए थे और इस लिये दोनों समकालीन माने जाते हैं। दुर्विनीत गांग नरेश थे और चालुक्य वंश के प्रथम नरपति विष्णुवर्धन और कांची के पल्लव नरपति विष्णुवर्धन के सहयोगी। इस तरह दुर्विनीत का स्थितिकाल ६०० ई० के करीब पड़ता है। कन्नड़ में ही तत्त्वार्थ महाशास्त्र की एक टीका चूडामणि (तुम्बुलूराचार्य कृत) है। यह सातवीं सदी की समझी जाती है। कन्नड़ में शिलालेख पाँचवीं सदी ई० तक के पुराने मिलते हैं।

तेलगू भाषा का सब से पुराना ग्रन्थ भारत है। इसके रचयिता, पूरबी चालुक्य नरेश राजराज के राजकवि नाभय्य भट्ट थे। राजराज का समय १०२३-६३ ई० है। नाभय्य भट्ट तेलगू भाषा के प्रथम व्याकरण-कार भी हैं। किसी भाषा में व्याकरण का बनना इस बात का द्योतक है कि उस भाषा में थोड़ा बहुत साहित्य रचा जा चुका है। शिला-लेखों की कवितामयी भाषा से भी इस बात का प्रमाण मिलता है। इनमें गुणगविजयादित्य (८४४-८८ ई०) के लेख उल्लेख-योग्य हैं।

केरल की भाषा १० वीं सदी ई० तक शुद्ध तामिल (शेन्द-मिळ) रही इस कारण मलयालं का साहित्य बहुत पुराना नहीं मिलता। ट्रावंकोर के नरेश श्रीराम का बनाया हुआ रामचरितं मलयालं का प्रथम ग्रन्थ समझा जाता है। श्रीराम १३ वीं सदी ई० में हुए।

हमने आपको मराठी, तामिल, कन्नड़ आदि भाषाओं के प्राचीन साहित्य का इस कारण परिचय कराया कि आप लोगों को समझा सकें कि भारतवर्ष के जिस प्रदेश में यह हिन्दवी साहित्य पनपा वहाँ अच्छा खासा साहित्य विविध भाषाओं में पहले से मौजूद था। देवगिरि में मुस्लिम राज १३२७ ई० में क़ायम हो चुका था, पर साहित्य का पहला ग्रन्थ रुवाजाबन्दा नवाब गंगू दराज मुहम्मद हुसेनी का मीराजुल आशिकीन इसके प्रायः सौ साल बाद बना। इसके मुक़ाबिले में मराठी भाषा में महिम-भट और ज्ञानेश्वर के ग्रन्थ १३०० ई० के पहले रचे जा चुके थे, और तामिल, कन्नड़, तेलगू के ग्रन्थ तो कई सौ साल पहले।

दक्खिन में यह नया साहित्य बहमनी, आदिलशाही, कुतुबशाही आदि सुल्तानों और उनके दरबारियों के दिमाग की उपज थी। इन सुल्तानों में से कइयों ने हिन्दू राजघरानों से कन्याएँ लेकर अपने महल बसाए और कुछ हिन्दू विद्वानों को राज्य और शासन का भी थोड़ा बहुत भार सौंपा। पर इस हिन्दवी भाषा के साहित्य के निर्माण में उस प्रदेश की जनता का कोई सहयोग नहीं दिखलाई पड़ता। सम्भव है कि इन नये आये हुए शासकों के सम्पर्क से मराठी, तेलगू, तामिल आदि भाषा भाषियों ने जहाँ अरबी और विशेषकर फारसी साहित्य का देखा और पढ़ा हां, वहाँ हिन्दवी के साहित्य का भी अवलोकन किया हां और मसनवियों आदि के क़िस्से कहानियों में रुचि दिखलाई हो। लेकिन कलाकार इस साहित्य का कोई हिन्दू नहीं हुआ। १७ वीं सदी तक जितने ग्रन्थ दक्खिनी हिन्दी के मिलते हैं वे सब मुसलमान साहित्यिकों की कृतियाँ हैं।

आगे चलकर ब्योरेवार विवेचन से मालूम होगा कि हिन्दवी

जबान पंजाब के पूरबी हिस्से और दिल्ली मेरठ के आस पास की भाषा थी। इस प्रदेश के निवासी भी उत्तर भारत साहित्य-विहीन न थे। पृथ्वीराज की हार का साहित्य (११६३ ई०) के बाद स्वदेशी संस्कृति बिखर सी गयी थी। केन्द्र टूट चुका था। निःस-सहाय मध्यमवर्ग को मथुरा वृन्दावन की शरणलेनी पड़ी। राज-पूतों ने राजपूताने में घर बसाया। कलाकार भी तितर बितर हो गए थे। इस समय में साहित्यिक भाषाएँ तीन थीं—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश। तीनों में रचनाएँ जारी थीं। दर्शन और साहित्यशास्त्र आदि के उच्चकोटि के ग्रन्थ संस्कृत में अब भी लिखे जाते थे। जयचन्द के राजकवि श्री हर्ष का नैषधीयचरित इस देश के महाकाव्य-साहित्य में अपना सानी नहीं रखता। उसकी नाजुक खयाली और अतिशयोक्ति उदू के बढिया से बढिया काव्य से टक्कर ले सकती हैं। श्रीहर्ष का ही, दर्शनशास्त्र का उत्तम ग्रन्थ लंडनलंडलाय आज भी बड़े बड़े दार्शनिकों के दाँत खट्टे करने में समर्थ है। कन्नौज के नरेश चंडपाल और महेन्द्र-पाल के दरबार का कवि राजशेखर, १० वीं सदी के आरम्भ में ही, उत्तम उत्तम संस्कृत ग्रन्थों के अलावा प्राकृत भाषा में कर्पूर-मंजरी सा अपूर्व सट्टक रच चुका था। साथ ही साथ जैन कला-कार अपभ्रंश में चरित पर चरित रचते चले जा रहे थे।

इस देश के सम्राटों में अन्तिम थे प्रतापी महाराज हर्षवर्धन (६०६-६४८ ई०)। उनके समय तक, जो-जो आक्रमणकारी बाहर से आए वे या तो स्वयं द्वार कर वापस गए या जीत गए तो ऐसे घुलमिल गए कि इसी देश के होकर स्वदेशी समाज के अंग बन गए। हमारे चातुर्वर्ण्य में आर्य, द्राविड, शक, हूण आदि

कितनी ही जातियाँ शामिल हैं। हर्षवर्धन के समय में ही राजनीतिक प्रतिस्पर्धा का कबुआ फल दिखाई पड़ने लगा था। जिस भावना से स्कन्दगुप्त को देशी राजाओं ने हूणों को बाहर भगा देने में मदद पहुँचाई थी उसका हास हो गया था। भारत इस समय राजनीतिक टुकड़ियों में ही नहीं समाज और संस्कृति सम्बन्धी टुकड़ियों में बँट गया था। ऐसी परिस्थिति में भारत कुछ ही दिनों ईरानी, अरबी और तुर्की हमले वालों से टक्कर ल सका। सिन्ध पर किया गया अरबों का हमला (७१२ ई०) बिरस्थायी न रह सका। महमूद गज़नवी भी भारत के मर्मस्थान पर कब्जा न कर पाया। पर मुहम्मद ग़ोरी द्वारा दिल्ली में पराधीन किए जाने पर, भारतीय राजश्री के दिन चल दिए। नरेशों ने हिम्मत ही नहीं हारी, पृथ्वीराज की मदद तो दूर, उसकी हार को अपनी जीत समझे। पर विदेशी कब किसका हुआ है? अरब और ईरान की जनता में उस समय वही आग भड़काई गई थी जो आज जर्मनी और जापान के नेताओं ने अपने देशों में भड़काई है। नतीजा यह हुआ कि जहाँ हमला करनेवाला जान की बाजी खेल कर लड़ रहा था वहाँ उस समय का भारतीय एकत्व की भावना को भूला हुआ था। वह भगवान कृष्ण के मार्मिक उपदेश

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्त्यसे महोम् ।

तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥

की याद खो चुका था, वेद के आदेश

संगल्हष्वं संवदष्वं संवो मनोसि जानताम् ।

अथवा

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः ।

मन्त्र की कौन बात कहे ?

वर्तमान भारतीय आर्य भाषाओं का आरंभ मोटे ढंग से करीब १००० ई० के बाद से माना जाता है और उससे पहले अपभ्रंश का। इस समय संस्कृत और शौरसे-
भाषाओं की नी महाराष्ट्री आदि प्राकृतें परिद्धतसभा
स्थिति की ही चीजें रह गई थीं। साधारण जनता
न उन्हें समझती थीं न बोलती थी।
अपभ्रंश ही बोलचाल के सबसे निकट की भाषा थी। काव्य में
अपभ्रंश के इस्तेमाल का पहला उल्लेख हमें दण्डी की काव्यादर्श
नाम की पुस्तक में मिलता है—

आभीरादिगिरः काव्येष्वपभ्रंशतया स्मृता : ।

ऐसा जान पड़ता है कि आचार्य दण्डी के समय (७वीं सदी ई०) में आभीर आदि इस देश में बहुत पुराने नहीं पड़े थे और उस समय की बोल चाल की भाषा अपभ्रंश बोलते थे। काव्य में उनके मुख से जो भाषा जुलवाई जाती होगी वह संस्कृत या प्राकृत न होकर अपभ्रंश ही रहती होगी। अपभ्रंश में साहित्य-निर्माण का उल्लेख बाण के हर्षचरित में भी मिलता है। अपभ्रंश में साहित्य का सृजन १६वीं सदी ई० तक चलता रहा पर १,००० ई० के करीब यह उच्चशिखर पर रहा होगा। इस समय के आस पास की बीसियों रचनाएँ मिली हैं। अपभ्रंश उत्तर भारत में सिन्ध से लेकर बंगाल तक और दक्खिन में गुजरात और महाराष्ट्र तक फैले हुए थे। इनका जो रूप सर्वमान्य हुआ वह उसी प्रदेश का था जो आज मोटे तौर से खड़ी बोली का क्षेत्र है। भाषा-विज्ञानियों की धारणा है कि अपभ्रंश के इस साहित्यिक रूप के साथ, उसका बोलचाल का भी कोई रूप

भारत में सब कहीं प्रचलित था और हर राज्य में ऐसे लोग थे जो इस को अन्तर्राज्य या अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिए काम में लाते थे। स्थिति कुछ आजकल की खड़ी बोली हिन्दी की स्थिति सी रही होगी। संस्कृत भी अन्तर्राज्य व्यवहार के लिए मौजूद थी पर उसका इस्तेमाल अपेक्षा से सीमित था। वह पंडित समाज की चीज रह गई थी। इस बोलचाल के अपभ्रंश में भी अलग अलग जनपदों के अनुसार थोड़े बहुत भिन्न रूप रहे होंगे। आज भी जो हिन्दी खड़ी बोली का रूप हमें पञ्जाबी, सिन्धी, तेलगू आदि अलग-अलग भाषाओं के क्षेत्र में बोलचाल में मुनाई पड़ता है, वह एक नहीं और स्टैंडर्ड खड़ी बोली से जुदा है। जब आज रेल डक आदि परस्पर सम्पर्क और आने जाने के साधनों की बहुतायत के समय में ऐसी हालत है तो ११ वीं सदी में इससे कैसी भिन्न समष्टि-बोधक स्थिति रही होगी उसका अन्दाज़ लगाया जा सकता है। अरब के मशहूर यात्री अल्बेरूनी ने ११वीं सदी के आरंभ काल (१०२५ ई०) की स्थिति का बयान करते हुए लिखा है कि उस समय भारत में भाषा की दो शाखाएँ थीं—एक साहित्य की और दूसरी बोलचाल की। इस बोलचाल वाली को वह उपेक्षित और जनसाधारण की मानता है। यह बोलचाल का अपभ्रंश ही रहा होगा। सवाल उठाया जा सकता है कि उस समय भारत में अलग अलग स्वतन्त्र राज्य थे और अलग अलग जनपदीय बोलियों, इनमें आपस के लेन-देन या व्यवहार की कल्पना करना युक्तिसंगत नहीं। इस सवाल का जबाब यही है कि इस देश में भिन्नता के होने पर भी संस्कृति-सम्बन्धी एकता पुराने समय से चली आ रही थी। इसका इतिहास प्रियदर्शी राजा अशोक से लेकर लगातार मिलता है।

एकता में बाँधने वाले केवल मौर्य, गुप्त आदि बड़े बड़े साम्राज्य ही न थे, थे इनके अलावा देश के कोने कोने में फैले हुए हिन्दू, बौद्ध और जैन तीर्थस्थान। चारों कोनों पर शंकराचार्य की पीठों और कुम्भ आदि देशव्यापी मेलों की योजना भी समष्टि और एकता की भावना को जाग्रत और स्थिर रखने में काफ़ी मदद पहुँचाती रही है।

सफल विदेशी आक्रमण को अन्दर से खोखला करने के उपाय भारतीय समाज ने सोचे थे। मुस्लिम धर्म को राजकीय बन मिल हुआ था, उसके सहारे मुस्लिम सन्त और दर्वेश अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे और फलस्वरूप भारतीय समाज के कुछ लोग अपना धर्म बदल रहे थे। स्वदेशी जन को स्वदेशी धर्म और संस्कृति में क़ायम रखने के लिए भारतीय नेताओं को उस समय नए उपायों का अबलम्बन करना पड़ा। रीति रिवाज के नियम कड़े कर दिए गए। अन्दर ही अन्दर विदेशी के बहिष्कार की भावना को उत्तेजना दी गई। गोरखपन्थी, सहजिया आदि साधुओं के समूह के समूह अपने अपने मत का प्रचार करने के लिए एक छोर से दूसरे छोर तक फिर रहे थे। इस सर्वकृष प्रचार के लिए वर्तमान भाषाओं का सहारा लिया गया और अन्तजनपद प्रचार के लिए बोल चाल के अपभ्रंश का। यह प्रचार मुख्यरूप से ज़बानी ही किया गया।

उत्तर भारत की इस बोलचाल की भाषा में साहित्य का सृजन पहले पहल विदेशियों ने किया। यह बात स्वाभाविक थी। इस समय देशी कलाकार अपनी प्रचलित साहित्यिक भाषाओं—संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश—में रचनाएँ कर रहे थे। ये ज़बानें आपे हुए विदेशियों के लिए मुरिकल ही नहीं, बेकार भी थीं।

अपनी मातृ-भाषा फ़ारसी, तुर्की के अलावा यदि उन्हें किसी भाषा से सरोकार था तो साधारण जनता की बोल-चाल की भाषा से जिसमें उन्हें रोज़ाना व्यवहार करना था। उन्हें इस देश में अपने साहित्य और संस्कृति का भी प्रचार करना था। यह सुगमता से बोल-चाल की ही ज़बान में हो सकता था। इस प्रचार कार्य में मुसलमान सन्तों और दर्वेशों का ही मुख्य हाथ था। इनके घरों पर बहुधा और नियमरूप से फ़ारसी बोली जाती थी। मुल्तानी खानदानों में फ़ारसी का हो दौर दौरा था। पर भारतीय जन के साथ व्यवहार करने में इस प्रदेश की भाषा शौरसेन अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी खड़ी बोली का सहारा लिया गया। डा० अब्दुल हक़ ने अपनी किताब “उर्दू की इन्ति-दाई नशो व नुमा में सृफ़ियाय कराम का काम” में इस बात का उल्लेख किया है कि इन फ़कीरों और बुजुर्गों के घरों पर कभी कभी हिन्दी भाषा का भी प्रयोग किया जाता था। इन साधु संतों की मजलिसों में केवल विदेशी मुसलमान ही नहीं, भारतीय मुसलमान और थोड़े बहुत हिन्दू भी शामिल होते होंगे। इन हिन्दु-स्तानियों के लिए इन बुजुर्गों को हिन्दी भाषा का प्रयोग करना पड़ता होगा, टूटे फूटे शब्दों में ही सही। आज भी गिर्जाघरों में जनपदी बोली या खड़ी के साथ अंगरेज़ी के शब्दों की कनक मिलती है। इसी तरह आज से सात आठ सौ साल पहले भी एक खिचड़ी बोली निकल पड़ी जिसका आश्रय सर्वांश में भारतीय था, केवल विदेशियों के मुँह से निकली हुई ज़बान में विदेशी शब्दों की संख्या कुछ न कुछ रहती थी। उस समय भी भारतीय जन खड़ी बोली में बहुत विदेशी शब्द न लाता होगा और जिन्हें लाता भी होगा उन्हें भारतीय जामा पहनाकर। धीरे-धीरे मुस्लिम

राज्य और संस्कृति के विस्तार के साथ साथ इस लक्ष्मी बोली (हिन्दी) की भी व्यापकता बढ़ी। सूफियों का बयान करते हुए डा० अब्दुल हक उसी पुस्तक में लिखते हैं—

“इन जुबुगों के घरो में भी हिन्दी बोलचाल का रवाज था और चूं कि यह इनके मुफ्तीदे मतलब था इसलिए वह अपनी तालीम व तकलीम में भी इसी से काम लेते थे।”

जरा “इनके मुफ्तीदे मतलब” इन शब्दों पर ध्यान दीजिए। इनमें साफ इशारा धर्म प्रचार की ओर है। धर्म प्रचार के लिए जनता की बोली से बढ़कर कोई साधन नहीं हो सकता। इसी लिए महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध ने संस्कृत (छन्दस्) का पल्ला न पकड़ कर प्राकृतें अपनाईं। गोरख, कबीर, तुलसीदास ने जनपदी बोलियाँ लीं। ईसाई पादरियों ने भी विविध जनपदी बोलियों में इंजील के अनुवाद कराए और उनके द्वारा ईसाई मत का इस देश में प्रचार किया। इसी तरह इतिहास-पूर्व काल में अगस्त्य, परशुराम आदि आर्य संस्कृति के प्रचारकों ने दक्षिण में उस समय की बोल चाल की भाषाओं में प्रचार किया होगा।

जिस भाषा को मुसल्मान सूफियों ने धर्म के प्रचार का साधन बनाया और जिसे मुस्लिम साहित्यकारों ने अपने सृजन की भाषा माना वह इस देश में पहले से मौजूद थी।
हिन्दी का उसे मुसल्मान कहीं बाहर से नहीं लाए।
आदिकाल जिस समय इन्होंने उसे अपनाया, उस समय भी उसमें प्रचुर कथा-साहित्य और गीति-काव्य मौजूद रहा होगा जो आज मिलता नहीं, क्योंकि लिखा नहीं गया। पर वह परम्परा से जनपदी लोकभाषा में चला आ रहा है। सच तो यह है कि सभी बोलियों में वह मौजूद है।

मुस्लिम सन्तों और साहित्यकारों ने उस भाषा को इतना सहारा अबरय दिया कि उसे अपने प्रचार का साधन बनाया। खेद है कि उस समय के ये विदेशी साहित्यकार भारतीय साहित्यिक भाषाओं और परम्पराओं से परिचित न थे और न उन्हें ज्ञान था यहाँ के अलंकारशास्त्र और छन्दशास्त्र का। नहीं तो वे भारतीय जनता के दिलों तक पहुँचने के लिए अपने खयालों को पूरे तौर से भारतीय जामा पहनाते। नतीजा यह हुआ कि उनके बनाए हुए ग्रंथ जनता में जगह न कर पाए। उनकी भाषा में ज़रूरत से ज्यादा विदेशीपन का पुट था।

उत्तर भारत में हिन्दी के कवियों में सर्वप्रथम अमीरखुसरों समझे जाते हैं। प्रसिद्ध औलिया शेख निज़ामुद्दीन (१२३६-१३२४ ई०) के यह शिष्य थे। इनका जन्मस्थान ज़िला एटा और जन्मवर्ष १२५३ ई० बताया जाता है। देहान्त १३२५ ई० में हुआ। इन्होंने फ़ारसी में काफी कविता की है पर हिन्दी में भी थोड़ा बहुत कहा है। इनकी जो कविता मिलती है उसकी भाषा विश्वसनीय नहीं। तब भी इतना कह सकते हैं कि इनकी हिन्दी बोलचाल की भाषा थी, जिसमें खड़ी के साथ ब्रज का भी थोड़ा पुट था। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवि मसऊद का उल्लेख किया है जिसने भी प्रचुर फ़ारसी काव्य के अतिरिक्त कुछ हिन्दी में भी लिखा था। मुहम्मद अफ़ी ने अपने तज़क़रे (१२२८ ई०) में लिखा है कि मसऊद ने दो दीवान फ़ारसी में और एक हिन्दी में लिखा था। मसऊद सुल्तान इब्राहीम के ज़माने में थे और दिल्ली के पराजय के समय ज़िन्दा थे, इसलिये उनका समय १२वाँ ई० सदी माना जाता है। खेद है कि इस कवि का कोई भी हिन्दी काव्य, ग़लत या सही, नहीं मिलता।

डा० अब्दुल हक ने उक्त पुस्तक में शेखफरीदुद्दीन शकरगंजी (११७३-१२६५ ई०) का कुछ कलाम उद्धृत किया है। ये पद्य देखिये—

तन धीने से जो दिल होता पूक ।
 पेशरू अचक्रिया के होते गूक ॥
 रोश सबलत से गर बड़े होते ।
 नोकदवाँ से न कोई बड़े होते ॥
 खाक लाने से गर खुदा पाएँ ।
 गाय बैलौं भी वासलौं होजाएँ ॥
 गोश गीरी में गर खुदा मिलता ।
 गोश चोथाँ कोई न वासिल था ॥
 इश्क का रमूज न्यारा है ।
 जुज मदद पीर के न चारा है ॥

इन्हीं शेख के झूलना के ये दो शेर भी देखिये—

जली याद की करना हर घड़ी, यक तिल इजूर तो टलना नई ।

उठ बैठ में बाद सों शाद रहना, गवाहदार को छोड़के चलना नई ॥

शेख शरफुद्दीन बू अली कलन्दर जिनका देहान्त १३२३ ई० में हुआ, अमीर खुसरौ के समकालीन थे। इनका यह दोहा मशहूर है—

सज्जन सकारे जाबंगे और नैन मरेंगे रोय ।

विषना ऐसी रैन कर भोर कधी ना होय ॥

इस तरह उत्तर भारत की खड़ी बोली में काव्य का निर्माण १२ वीं सदी ई० तक का प्राचीन मिलता है और दो चार नमूने १३ वीं सदी के मिलते भी हैं। खड़ी बोली में साहित्य के निर्माण की परम्परा उत्तर भारत में इसके बाद कई सदियों तक लुप्त

रही। तुलना की नज़र से खड़ी की अपेक्षा अबधी और ब्रज का साहित्य इससे काफी बाद का है। अबधी के प्रथम सन्तकवि कबीर १५ वीं सदी में हुए। ब्रज में साहित्यनिर्माण १५ वीं सदी के अन्त में जब वल्लभाचार्य ब्रजमंडल में आकर रहने लगे तब से आरम्भ होता है। मैथिली में ज्योतिरीश्वर कविशेखराचार्य का आरम्भ १४ वीं सदी के आरम्भ का है। डिंगल का पृथ्वी-राजरासो पृथ्वीराज के दरबारी चन्दकवि का बनाया हुआ कहा जाता है पर इस ग्रन्थ का वर्तमान उपलब्ध रूप उस समय का नहीं है, और १६ वीं सदी का हो सकता है।

हिन्दी के कुछ मान्य विद्वानों ने कभी कभी पुष्पदन्त आदि अपभ्रंश के कवियों को और बौद्ध गान ओ दोहा आदि के रचयिताओं को हिन्दी के आदि कवियों का पद दिया है। पर यह भ्रम है। उन ग्रन्थकारों की भाषा और हिन्दी में बड़ा अन्तर है। सचाई यह है कि हिन्दी खड़ी बोली के जो प्राचीन ग्रन्थ इस समय मिलते हैं वे विदेशियों की कृतियाँ हैं। इस बात को स्वीकार करने में कोई लज्जा की बात नहीं कि हमारी भारतीय बोली "हिन्दी" को नए आये हुए विदेशियों ने साहित्य का माध्यम बनाया। जब उन्होंने इसे अपनाया उस समय भारतीय परम्परा में ऊँचे दर्जे का साहित्य संस्कृत में रचा जा रहा था, पर काव्य, नाटक, कथा कहानी आदि प्राकृतों और अपभ्रंशों में लिखे जा रहे थे। भारतीय परम्परा के अनुकूल ही इस हिन्दी में भी लोक-गीत और लोक-कथाएँ रही होंगी जो मौखिक थीं और जिनका कोई लिखा निशान बाकी नहीं। विदेशियों की विद्याओं की भाषा यहाँ की संस्कृत के मुकाबिले की फारसी थी और विदेशी परम्परा वाले बर्दिया मार्के की चीजें फारसी में लिखते थे पर

जन-साधारण के समझने लायक सिद्धान्त और किस्से कहानियाँ हिन्दी में भी लिख देते थे। आरम्भ-काल की रचनाएँ अधिकतर फ़ारसी के ग्रन्थों के अनुवाद हैं। इसी लिये उनमें भाव विदेशी हैं। भाषा भारतीय है, पर जहाँ तहाँ अरबी फ़ारसी की शब्दावली की खपत सहित; लिपि फ़ारसी, छन्द भी फ़ारसी, कविता का रूप भी फ़ारसी—मसनवी, मर्सिया, क़िता आदि, न कि महाकाव्य, खण्डकाव्य, चरित आदि।

खड़ी बोली के साहित्य की यह विदेशी परम्परा ईसा की चौदहवीं पंद्रहवीं सदी में गुजरात, महाराष्ट्र, विजयनगर आदि दक्खिनी प्रदेशों में मुसलमानी फ़ौजों और दक्खिन को सन्तों और दर्वेशों के साथ गई और ज्यों-ज्यों प्रस्थान ये लोग वहाँ बसते गये त्यों त्यों वहाँ इसने भी घर कर लिया। फ़ौजों के जाने का विवरण ऊपर दिया जा चुका है और यह भी बताया जा चुका है कि किस तरह दक्खिन में ये मुसलमानी सल्तनतें कायम हुईं। दौलताबाद में पूरी दिल्ली ला बसाने की मुहम्मद तुग़लक की सनक सब लोगों को मालूम है। सन्त लोग किस संख्या में पहुँचे इसका विवरण डा० अब्दुलहक़ के शब्दों में सुनिए—

“हज़रत बुर्हानुद्दीन ग़रीब अपने मुर्शिद कामिल हज़रत सुल्तानुल-औलिया ख़ाजा निज़ामुद्दीन के हुक्म से चारसौ बुजुर्गों के साथ दक्खिन की जानिब रवाना हुए और वहाँ पहुँच कर दौलताबाद (रौज़ा) में क़याम क़र्माया।”

—मीराजुल आशिक़ीन की भूमिका
अचरज की बात यह है कि जहाँ उत्तरभारत में खड़ी बोली की इस परम्परा की रचना कई सदियों तक लुप्त रही, दक्खिन में

इन्हीं सदियों में वह खूब फूली फली। इसका एक ही कारण समझ में आता है और वह यह कि उत्तर भारत वालों का फ़ारस आदि से बराबर सम्पर्क जारी रहा। नए नए राजवंश आ आकर ऊँचा करते रहे और अपने अपने देशों से लाए हुए फ़ारसी के कवियों और प्रथकारों को आदर मान देते रहे। इस प्रकार उत्तर में फ़ारसी का प्रभुत्व कायम रहा और करीब १८वीं सदी के मध्य तक अडिग रहा। पर दक्खिनी रियासतों में यह विदेशी खिलखिला नाममात्र को रह गया। औरंगज़ेब ने जब दक्खिन जीत लिया तब जाकर बड़ी तादाद में आना जाना फिर शुरू हुआ। इस लिए हिन्दी ने जो क्रम दक्खिन में जमाए उन्हें फ़ारसी हिला न सकी। बहुधा मुल्तानों ने फ़ारसी के साहित्यकारों को भी मान और पुरस्कार दिया पर हिन्दी को भिटा कर नहीं।

प्रसिद्ध इतिहासकार फ़रिस्ता ने लिखा है कि बहमनी राज्य के दफ़तरों में हिन्दी ज़बान प्रचलित थी और सल्तनत ने उसे सरकारी पज़बान का पद दे रक्खा था।

हिन्दी बहमनी राज्य के विघ्न-भिन्न हो जाने पर भी
राजभाषा हिन्दी का वह पद उत्तराधिकारी रियासतों
ने कायम रक्खा। दक्खिन में फ़ारसी की

निश्चय हिन्दी का राजभाषा बनना दो कारणों से हुआ जान पड़ता है। इस प्रदेश में मराठी तेलगू आदि कई भारतीय भाषाएँ चल रही थीं। पर इनसे उत्तर भारत से आए हुए सिपाही और अमीर परिचित न थे। उन्हें ज्ञान था केवल हिन्दी का, और अल्पसंख्या को फ़ारसी का। बहुतेरे सिपाही फ़ारसी से भी अनभिज्ञ रहे होंगे। सब जगह थोड़ा बहुत प्रचलित अपभ्रंश उस प्रदेश में भी रहा होगा। उसके नाते जनता को भी हिन्दी

थोड़ी बहुत परिचित लगती होगी। इस लिए हिन्दी को ही अपना नाम नौति-संगत समझा गया। दूसरे यादववंशी नरेशों ने एक देशी भाषा मराठी को राजभाषा कर रक्खा था। हिन्दी को उस भाषा की जगह बिठाने में परम्परा की भी थोड़ी बहुत रक्षा हो गई।

दक्खिनी के पहले ग्रंथकार स्वामी बन्दानवाष्य गेसुदराज मुहम्मद हुसेनी (१३१८-१४२२ ई०) हैं। इनके पिता सैयद यूसुफ

(शाह राजू क़त्ताल) उस चार सौ के समूह में

दक्खिनी में आए थे जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका

साहित्य-निर्माण है। दक्खिन आने के समय स्वामी की अव-

स्था चार पाँच साल की थी। माँ भी साथ

आई थीं। अभी आप पन्द्रह साल के ही हुए थे कि पिता स्वर्ग सिधार गए। उनके देहान्त पर यह अपनी माँ के साथ दिल्ली लौट गए।

१३६८ ई० में तैमूर लंग ने दिल्ली जीती और ऐसा ऊबम मचाया

कि स्वामी मुहम्मद हुसेनी अस्सी साल की उम्र में भी बाल-

बच्चों समेत दक्खिन की तरफ़ रवाना हुए और भेलसा, गवा-

नियार, भौंडी और गुजरात के अन्य स्थानों से होते हुए दौलता-

बाद पहुँचे, और सुल्तान फ़ीरोज़शाह बहमनी के निमन्त्रण पर

गुलबर्गा चले गए और मरते दम तक वहीं रहे। आपकी कृतियाँ

अधिकतर फ़ारसी में हैं पर तीन रिसाले, मीराजुल आशक़ीन,

हिदायत नामा और रिसाला सेहवारा, दक्खिनी में हैं। इनमें से

पहला डा० अब्दुलहक़ ने सम्पादित कर प्रकाशित किया है। यह

उन्नीस पन्नों का अरबी फ़ारसी मिश्रित हिन्दी गद्य है। यह बात

संभावना से बाहर नहीं कि स्वामी साहब ने मूल पुस्तक फ़ारसी

में लिखी हो और वर्तमान ग्रंथ उसका अनुवाद हो। इसकी

पुरानी से पुरानी प्रति सन् १५०० ई० की लिखी हुई मिली है।

इस लिए, रूखाजा साहब की कृति के रूप में न सही, १५वीं सदी के गद्य के रूप में इसका मूल्य कम नहीं। रूखाजा साहब के पोते अब्दुल्ला हुसेनी के भी एक ग्रंथ निशातुल इरक का पता चला है जो शेख अब्दुल कादिर हीलानी के फारसी ग्रंथ का दक्खिनी में अनुवाद है। अब्दुल्ला द्वितीय अहमदशाह बहमनी (१४३४-१४५७ ई०) के जमाने में मौजूद थे। बहमनी राज्य का सब से मशहूर ग्रंथकार और कवि निज़ामी था जो सुल्तान अहमदशाह तृतीय के शासनकाल (१४६०-६२ ई०) में मौजूद था। यह दक्खिनी का पहला कवि है। इसकी रचना कदमराव व पदम मसनवी है।

दक्खिनी साहित्य बीजापुर के आदिलशाही राज्य और गोलकुंडा के कुतुबशाही राज्य में खूब चमका। दोनों राज्यों के सुल्तान न केवल कविरत्नक थे, बहुधा स्वयं अच्छे कवि थे। इनमें मुहम्मद कुली कुतुबशाह (१५८०-१६११ ई०) और सुल्तान इना-हीम आदिलशाह विशेष उल्लेख करने के योग्य हैं।

कुतुबशाही राज्य में वजही, गवासी, इन्न निशाती, गुलाम अली, सेबक आदि कई अच्छे साहित्यकार हुए। इसी तरह आदिलशाही में भी शाह मीरां जी, बुर्हानुद्दीन जानिम, मुक़ीमी, सनाती, रुस्तमी, नसरती आदि कई उच्च कोटि के कलाकार हुए। बहमनी सल्तनत के मिट जाने पर बीदर में बरीदशाही कायम हुई, यहाँ भी थोड़ा बहुत साहित्य रचा गया।

औरंगज़ेब की फौजों ने १६८५-६ में आदिलशाही और कुतुबशाही सल्तनतों को ख़तम करके मुराल राज्य स्थापित किया था। इसमें भी कई अच्छे अच्छे कवि हुए जिनमें प्रमुख कवि बली औरंगाबादी हैं। इनके अलावा अईफी, बहरी, बजदी, बली वेलूरी और इशरती के भी नाम उल्लेख-योग्य हैं।

मुगल राज्य के ही सूबेदार आसफजाह १७२३ ई० में स्थायी रूप से दक्खिन के नबाब नियत हुए । अर्से तक यह आसफजाही खानदान मुगल राज्य के अधीन रहा और बोदा बहुत दिल्ली का शासन मानता रहा । बाद को स्वतन्त्र हो गया और आज तक कायम है । बली औरंगाबादी के दिल्ली की यात्रा करके लौटने के बाद जहाँ दिल्ली के कवि और ग्रन्थकारों ने फारसी को छोड़कर हिन्दी या रेखता में लिखना शुरू किया, वहाँ दक्खिन में भी ज़बान का स्टैंडर्ड रूप निखरने लगा और साथ ही साथ स्वदेशी शब्दों का बहिष्कार और फारसी अरबी शब्दों की भरती आरम्भ हुई । दिल्ली से लेन देन, आना जाना १७ वीं सदी के मध्य से ही चल पड़ा था । अठारवीं सदी में यह और बढ़ा । उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में दिल्ली का केन्द्र टूट गया, लखनऊ जमने लगा, और हैदराबाद भी कलाकारों का अच्छा पोषक साबित हुआ । दिल्ली से आकर हफ़ीज़ दक्खिन में बस गए । यह दक्खिन में, जौक़ दिल्ली में और नासिख लखनऊ में मशहूर हुए । उन्नीसवीं सदी के कवियों के ग्रन्थों में दक्खिनी विशेषताएँ प्रायः गायब ही हैं । अच्छे कवियों की कृतियों में और उत्तर भारत के शायरों की रचनाओं में न भाषा का और न भाव का कोई अन्तर दिखाई पड़ता है । दोनों फ़ारसी के रंग में सराबोर हैं ।

आसफ़जाही राज्य में इस भाषा में दो चार हिन्दू ग्रन्थकार भी दिखाई पड़ते हैं जिनमें ला० मोहनलाल 'मेहताब' और ला० लक्ष्मीनारायण 'शफीक़' का उल्लेख किया जा सकता है । बीसवीं सदी में, और लखनऊ की नबाबी के ख़तम होने पर १९ वीं के उत्तरार्ध में भी, निज़ाम राज्य उर्दू का एकमात्र पोषक रह गया । राज्य की ओर से खुले हाथ से उर्दू के कलाकारों और सभा

सोसाइटियों की मदद की गई। कोई भी आया खाली हाथ नहीं लौटा। अब प्रायः सभी साहित्यकारों की भाषा खालिस उर्दू है। तब भी इनका दुःख कवि दक्खिनी में लिख गए हैं। इनमें हलम की ठुमरियाँ और अजमत के हिन्दी छन्द अच्छे बन पड़े हैं। मुहिब हैदराबाद के पहले शख्स थे जिन्होंने कबी-मुघार और स्त्री के अधिकारों पर जोर दिया। इनकी बाणी आदरणीय है।

अगले व्याख्यान में दक्खिनी भाषा का विवेचन किया जायगा।

भाषा

पहले व्याख्यान में हम देख चुके हैं कि जिस बोल बान की भाषा में अमीर खुसरो और शेख फरीदुद्दीन शकरगंजी आदि प्रारम्भ काल के कलाकारों ने रचना की और जिसका साहित्य उत्तर भारत में लुप्त होकर, दक्खिन में १५वीं, १६वीं और १७वीं ई० सदी में फूट निकला उसका नाम हिन्दवी और हिन्दी या और उसी को दक्खिनी साहित्यकार कभी कभी दक्खिनी भी कहते थे। 'उर्दू' नाम दक्खिनी के किसी कलाकार के ग्रन्थ में नहीं आया। भाषा के अर्थ में इस शब्द का प्रथम प्रयोग उत्तर भारत के कवि मुसहफ़ी ने किया है और मीर ने निकानुरशोबरा (१७५२ ई०) में 'अबान-ए-उर्दू-ए-मुअल्ला' कहा है। यहाँ उर्दू की अबान अर्थ है और उर्दू का अर्थ बाजार या लरकर न होकर उच्च निवासस्थान (शाही क़िला या महल) है।

उर्दू भाषा के उद्गम का विचार करते समय मुसलमान मनीषी इस भाषा का सम्बन्ध मुस्लिम आक्रमण या किसी विशेष भाग में मुस्लिमों की बस्ती से जोड़ देते हैं, और इसी के कारण कभी इसे सिन्ध की, कभी पंजाब की और कभी दक्खिन की क़रार दे देते हैं, साथ ही यह ग़लत धारणा रखते हैं कि उर्दू हिन्दुओं और

मुसल्मानों के मेलजोल से निकली हुई ज़बान है। ऐसे विवेकी विद्वान जैसे मौ० मुलेमान नदवी भी लिख देते हैं—

“लेकिन हकीकत यह माखूम होती है कि हर मुमताब सूबे की मुफ़ामी बोली में मुसलमानों की आमद व रफ्त और मेलजोल से जो तगैयुरात हुए उन सबका नाम उर्दू रक्खा गया है।”

मुक़ालाते उर्दू १९३४ ई० प० ४६

मुसल्मानों की आमद-रफ्त व मेलजोल से भारतीय भाषाओं पर केवल एक असर हुआ और वह यह कि इनमें अरबी, फ़ारसी और तुर्की आदि विदेशी भाषाओं के कुछ शब्द आ गए, किसी में कम, किसी में कुछ ज्यादा। मुस्लिम बादशाही के केन्द्र दिल्ली के अड़ोस पड़ोस की भाषा में, स्वाभाविक ही था कि कुछ अधिक विदेशी शब्दों ने जगह कर ली, विशेषकर उस बोलचाल में जो दरबारियों और उस समय के अफसरों के इस्तेमाल में आई या उन लोगों की भाषा में जिन्होंने मुस्लिम विद्यागृहों में शिक्षा पाई। आज भी हम उन लोगों की भाषा में अधिक अँगरेज़ी शब्द पाते हैं जो स्कूल कालेजों में पढ़ते हैं या पढ़ कर अँगरेज़ी दफ्तरों में काम करते हैं। तुलना की नज़र से देखा जाय तो जनता की बोली में केवल नए विचारों का बोध कराने वाले ही विदेशी शब्द अधिकतर आते हैं, दूसरे बहुत कम। पर विदेशी शासन और संस्कृति, विशेष कर शिक्षा दीक्षा से घाल मेल करने वाली श्रेणियों में अपेक्षाकृत जनता जितने शब्द लेती है, उससे कहीं अधिक आ जाते हैं। यह भी संभव है कि यदि एक गिरौह एक जगह कई साल आबाद रह कर दूसरे स्थान पर फिर कुछ साल रहे और वहाँ कई साल रह कर फिर आगे बढ़े तो जिन

जिन स्थानों पर वह गिरोह रहा है उनके कुछ शब्द उसकी बोली में आ जायें ।

पर भाषा केवल शब्दों का समूह नहीं है । उसका एक ढाँचा होता है जो उसकी ध्वनियों और व्याकरण से बनता है । वही भाषा का देहपंजर है । उस देहपंजर में बहुत से शब्द मूलरूप से चिपके होते हैं और इन शब्दों का उस पंजर से समवाय सम्बन्ध रहता है । ये शब्द उसके दैनिक व्यवहार के हैं और उन्हें उस भाषा के बोलने वाले रोज़ काम में लाते हैं । इन शब्दों में भाषा के सर्वनाम, गिनतियाँ, खाने पीने, आने जाने, उठने बैठने, सोने आदि सर्वसाधारण क्रियाओं का बोध कराने वाले शब्द और रोज़मर्रा के इस्तेमाल की चीज़ों के नाम आते हैं ।

एक तो मुसल्मान इस देश में एक साथ एक जगह नहीं आए । कुछ अरब मलाबार में ७ वीं ई० सदी में आ बसे थे, कुछ ढवीं सदी में सिन्ध आए थे, थोड़े ईरानी और तुर्क ११ वीं में पञ्जाब में जम गये और फिर १२ वीं सदी के अन्त से शुरू करके उन्नीसवीं तक बराबर कम या अधिक भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा से होकर आते रहे । आज भी निज़ाम राव्य में कुछ ज्यादा और भूपाल में कुछ कम मात्रा में अरबी आदि विदेशियों को भरती किया जाता है । यदि इन मुसल्मानों और हिन्दुओं के मेलजोल से ही उर्दू बनती तो सिन्ध, मलाबार, पञ्जाब आदि प्रान्तों में रहने वाले मुसल्मानों की भाषा एक रही होती । सच्ची बात यह है कि इन मनीषियों की इस भ्रान्त धारणा का मूल कारण भाषा-विज्ञान के मौलिक सिद्धान्तों का और आर्य-भाषाओं के इतिहास का अज्ञान है । भाषा-विज्ञान के विद्यार्थियों को मालूम है कि वह भाषा जिसके हिन्दवी, हिन्दी, हिन्दुस्तानी और उर्दू ये कई

नाम प्रचलित हैं, संस्थान की दृष्टि से शौरसेनी प्राकृत और अप-
भ्रंश की आत्मजा है। जिस भाषा को भाषाविज्ञानियों ने पच्छिमी
हिन्दी की हिन्दुस्तानी शाखा कहा है, वही इसकी मूल है। यह
दिल्ली के आस पास की बोली है और पञ्जाब के पूरबी हिस्से
की केवल इस अंश में कि इसकी दो चार बातें पूरबी पञ्जाबी में
भी मिलती हैं। पर यह न तो पञ्जाबी है, न सिन्धी और न
मलाबारी या और कोई दक्खिनी भाषा। यह इस देश में,
मुसल्मानों के दिल्ली जीतने के पहले से मौजूद थी, विजेता उसे
अपने साथ नहीं लाए। वे लाए थे फ़ारसी और तुर्की जिनके
थोड़े बहुत शब्द इसमें भर गये, बस ! आज भी फ़ारसी में क़रीब
एक तिहाई शब्द अरबी के हैं, पर इस कारण फ़ारसी अरबी
नहीं हो गई। हिन्दुओं और मुसल्मानों के मेलजोल से बनी
हुई भाषा कहने का यदि इतना ही मतलब हो कि उसमें मुस-
ल्मानों के माध्यम से ये विदेशी शब्द आ गए हैं, तो उर्दू को
पेसा कह सकते हैं। पर यदि इस कथन का यह मतलब हो कि
उर्दू शैली को हिन्दू और मुसल्मान, दोनों वर्गों के कलाकारों ने
बनाया और सँवारा तो यह सरासर ग़लत है, क्योंकि १८वीं
सदी के पहले एक भी हिन्दू कलाकार नहीं मिलता जिसने इस
शैली में ग्रन्थ बनाये हों, और तब तक इसकी शैली अधिकांश
में मँज सँवर चुकी थी। बाद को जिन साहित्यकारों ने इसे अप-
नाया वे इस अन्धकारी परम्परा के ही अभिन्न और पोषक थे,
और स्वदेशी परम्परा से अपरिचित।

हिन्दी, हिन्दू भाषा के उद्गम आदि की विवेचना बाले
कई ग्रन्थ हिन्दी वाङ्मय में मौजूद हैं और हिन्दी भाषा और
साहित्य के ज्ञानकार सच्चाई से परिचित हैं। उर्दू में भी डा०

सैयद मुहोउदीन क़ादिरि 'ओर' की हिन्दुस्तानी लिसानियात नाम की पुस्तक है, जिसमें भी भाषाविज्ञान की दृष्टि से विचार किया गया है। इस लिये यहाँ इस विषय को दुहराकर हम आप का समय नहीं बर्बाद करना चाहते।

आज की साहित्यिक खड़ी बोली (हिन्दी या उर्दू) ने एक स्टैंडर्ड रूप धारण कर लिया है, परन्तु अपने ही प्रान्त में बोलचाल की खड़ी में उच्चारण और व्याकरण की विभिन्नता मिलती है। इसी तरह की विभिन्नता दक्खिनी हिन्दी के साहित्यिक ग्रन्थों में वर्तमान बोलियों में पाई जाती है। दक्खिनी आज भी आंशिक रूप से गुजरात, बम्बई, बरार, और हैदराबाद रियासत के बिस्तृत प्रदेशों में उत्तर भारत से गए हुए मुसल्मानों और हिन्दुओं की बोलचाल की भाषा है। वर्तमान दक्खिनी का विवरण डा० क़ादिरि ने अपनी अँगरेज़ी किताब हिन्दुस्तानी फ़ोनेटिक्स में दिया है। संक्षिप्त व्योरा सरकार द्वारा प्रकाशित भारतीय भाषा सर्वे की नवीं जिल्द के पहले हिस्से में मौजूद है। १८६१ ई० की आबादी की रिपोर्ट के अनुसार दक्खिनी के बोलने वालों की संख्या ३६,५४,१७२ थी। वर्तमान दक्खिनी के लक्षण अधिकांश में पुरानी (साहित्यिक) दक्खिनी पर भी लागू हैं। यहाँ इसका थोड़ा विवरण दे देना ज़रूरी है।

(१) हिन्दी बोलचाल के सभी स्वर अ आ, इ ई, उ ऊ, एँ ए, ओँ ओ, ऐ औ दक्खिनी में भी मौजूद हैं। डा० क़ादिरि का कथन है कि उकार और ओकार के बीच के ध्वनिवों उच्चारण का एक स्वर दक्खिनी में और सुनाई पड़ता है जो उत्तर भारत की बोलचाल में नहीं सुन पड़ता पर जो श्राविकी में मिलता है। स्टैंडर्ड

पद्म शब्द का दक्खिनी रूप पुद्म है जिसका उकार, न उ ही है और न ओं ही। उल्लेख के योग्य दूसरी बात यह है कि यदि पास पास के दां अक्षरों में दोनों जगह दीर्घ स्वर हो, तो पहले का उच्चारण कभी कभी ह्रस्व हो जाता है, जैसे,

वो अदमी नहीं जिसमें इन्साफ नै । (क्लुतुब मुरतरी)
 विलायत के अस्मान ते मार ज्यों । (सैफुल्मलूक बदी उवजमाल)
 हैरत ते गुंगे हुए सब मोती । (सबरस, प० १२)
 सुंगते दिल में भरे उसास । (सबरस, प० १०)
 इसी तरह भिगना (भीगना) आदि ।

(२) हिन्दी बोलचाल के सभी व्यञ्जन भी दक्खिनी में मौजूद हैं। पढ़े-लिखों की भाषा में फारसी अरबी के भी कुछ आंगण हैं। ये हैं ख, ज़, श, फ़, क़। अन्तिम के बारे में डा० कादिरि ने लिखा है—

“अरबी हर्क़ काफ़ का तलफ़्फ़ुज़ हिन्दोस्तान के लिए अजनबी है, इस लिए दोआब; के उर्दू बोलने वालों के अलावा दूसरे मुकामात के उर्दूदों इसका सही तलफ़्फ़ुज़ नहीं करते। पञ्जाब में यह क की तरह बोला जाता है और दक्खिनी में ख की तरह ।”

--हिन्दुस्तानी तिसानिबात, प० १०६

उदाहरण के लिये शौक़ की जगह शौख़ और वक़्त के लिए वख़्त। इसी तरह उत्तर भारत की बोलचाल म क़ की जगह ख़ बोला जाता है (शौख़, बख़्त)।

(३) उत्तर भारत की बोलचाल में जहाँ एक ही शब्द में दो मूर्धन्य ध्वनियों पास पास के अक्षरों में आती हैं, वहाँ दक्खिनी में पहली के स्थान में दन्त्य ध्वनि आ जाती है, जैसे—

तौंटा (टंटा), तुटे (टूटे), तेड़ीच (टेड़ी ही), थंडी (ठंडी), दाट (बाट), दबटना (डपटना), धूँड़ते (ढूँड़ते), दंडल (डंठल) धूँड़ाने (ढूँड़ने)—वजही ।

(४) स्टैंडर्ड खड़ी बोली में जहाँ शब्द के मध्य का दीर्घ व्यञ्जन ह्रस्व हो गया है और प्रतिकार में, पूर्ववर्ती स्वर दीर्घ, वहाँ दक्खिनी में बहुधा व्यञ्जन दीर्घ ही पाया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर ह्रस्व, यथा—

हत्ती—देखा यक हत्ती को जो आता अया ।

सुआ (सोना), चुआ (चूना), बल्ले (छाले), फिका (फीका) आदि ।

यह विशेषता खड़ी बोली की बोलचाल में भी पाई जाती है । उस में कभी कभी गाड़ी की जगह गौड़ी या गडा सुनाई पड़ता है । इसके अलावा भी दक्खिनी में दीर्घ व्यञ्जन (द्वित्व) मिला है, जैसे, डल्ली (डली), तल्ला (तला) आदि । यह बात भी उत्तर भारत की बोलचाल में पाई जाती है ।

(५) दक्खिनी में महाप्राण ध्वनियाँ बहुधा अल्पप्राण मिलती हैं, यथा—

ख का क—मुँजे देक तूँ, लाक, पारकी, मूरक, रकते नहीं,
फल चाक देख ।

घ का ग—पत्थर पिगले, गुला कर ।

ङ का च—बिचड़ावे, छाच, कुछ का कुच, पिचें (पीछे),
पूच ।

झ का ज—समज, समजेगा, मुज कों, तुज कों ।

ठ का ट—उट ।

द का द—कड़ाई, बड़ाई (= बढ़ाई), काड़ूँ, पड़ेगा पड़ने को,
चड़ चड़ ।

थ का त—हात, हाथी (हाथी), सात (साथ) ।

ध का द—अदिक, सुद, हूद, बाँद कर ।

म का ब--जीब, बी ।

इसी प्रकार - न्ह - की जगह - न- और - ग्ह - की जगह -म-
ध्वनियाँ मिलती हैं--

पिनाना (पिन्हाना), पैना (पैन्हा-पहनना) ।

कुमलाते (कुम्हलाते) ।

शब्द के मध्य का -ह- कहीं कहीं बिलकुल गायब हो गया है,
बिरोध कर कह- धातु के रूपों में, जैसे—

क्या मैं (कहा मैं), ज्यों अरबी में कता (कहता) है, दुनिया
जसे कते (कहते) हैं । ठैरते (ठहरते), पैज्ञान कर (पहचान कर)
में -ह- की ध्वनि गायब होकर अगले अक्षर में जा मिली है ।

एक आध उदाहरण अल्पप्राण व्यंजनों के महाप्राण हो जाने
के भी मिले हैं, यथा उल्ले (उल्ले), फंखड़ियाँ (फंखड़ियाँ) ।

(१) साहित्यिक खड़ी बोली में व्यंजनान्त पुलिग संज्ञाओं की
अधिकारी विभक्ति के एकवचन और बहुवचन
संज्ञा दोनों में एक ही रूप रहता है (जैसे, चोर
आया, चोर आए), पर दक्खिनी में बहुवचन
के लिए अविकारी में भी -ओं जोड़ दिया जाता है, यथा--

हीर गवासिबर के चातुराँ, गुन के गुराँ उनो भी बात को खोले हैं,
बो बोले हैं ।

हीर फ़ारसी के दानिशमन्दाँ, जिनोँ समजते हैं नाताँ के बन्दाँ, उनोँ कोँ योँ भाषा है ।

बाहिलोँ ने बोले हैं । खुदा के दोस्तोँ ने बोले हैं । हज़रत के बाराँ हैं । जेते गुनकारोँ होबसन आब लगन । बाबे अबब लोकोँ हैं । दंगोँ, जीवाँ, जाहिलोँ ।

खेलोँ बहोत बखे खेलनहार एक ।

ऐसियोँ औरतोँ ज़ातिर जीवाँ देते हैं ।

(२) व्यंजनान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं की अविकारी विभक्ति का बहुवचन साहित्यिक खड़ी बोली में -एँ, -ऐँ जोड़ कर बनाया जाता है, पर दक्खिनी में पुलिंग की तरह -आँ ही जोड़ कर बनाए हुए रूप बहुधा मिलते हैं, जैसे—

धुप्याँ न्यामताँ येँ क्पाँ पायेँ चल ।

जेत्याँ औरतोँ दोस्तदारोँ की. ध्याँ ।

भूट्याँ नातोँ कतो (कहती) ।

एक इश्क उसके एते रंगोँ एत्याँ खरतोँ ।

बाटाँ बहोत बखे ठार एक । कितानोँ ।

(३) साहित्यिक खड़ी बोली की इकारान्त-ईकारान्त स्त्रीलिंग संज्ञाओं में इस अविकारी विभक्ति के बहुवचन में -याँ जुड़ता है, वसी तरह दक्खिनी में भी, यथा—

एक अपे, अपनियोँ एतियोँ मूरतियोँ ।

बैसियोँ शाहपरियोँ ।

साहित्यिक हिन्दी में आकारान्त पुलिंग का बहुवचन -आ के स्थान पर -ए आदेश करके बनता है, दक्खिनी में -याँ जोड़ कर, जैसे सब दानायाँ (दाना लोग) ।

(४) साहित्यिक खड़ी बोली की विकारी विभक्ति के बहुवचन में सब संज्ञाओं में -ओं या -यों जोड़ा जाता है, पर दक्खिनी में -ओं रूप अपवाद है, सब कहीं -ओं, -यों रूप ही मिलता है, यथा—

पेसियाँ औरतों खातिर, अपन्याँ मावाँ खातिर, अँखियाँ सों, बतियाँ में बाजियाँ (बाजों) को, छुरियाँ सों, मुसल्मानों में, हिन्दुआँ में, सीपियाँ समाँ (सीपों की तरह), बन्दाँ बन्द्याँ (बन्दों) को, मिल्याँ (मिलों) को बिचड़ावे, दीदयाँ (दीदों) के अघार को, अंगारयाँ (अंगारों) में बहाया, तलवयाँ (तलवों) में, गई सौ जन्याँ (जनों) पास वो । दुन्दियाँ पर तू जो खड़ग चल खीच भावे ।

(५) साहित्यिक खड़ी बोली में जहाँ संज्ञा को दुहरा देते हैं वहाँ दक्खिनी में दुहराते समय पहली संज्ञा के अन्त में -ए, -एँ जोड़ देते हैं, जैसे—

घरे घर (घर घर,) ठावेँ ठावेँ, ठारेँ ठार, राते रात ।

(६) दक्खिनी में लिंग का बहुधा व्यत्यय मिलता है, साहित्यिक खड़ी बोली की पुल्लिंग संज्ञा कहीं स्त्रीलिंग में और कहीं स्त्रीलिंग संज्ञा पुल्लिंग में पाई जाती है । विदेशी शब्दों में यह बहुधा देखा गया है । उदाहरण के लिए—

अगर कोई बड़े की अदब रख्या । यहाँ अदब खीलिंग है ।

बादशाह की नाँवें अकल । जिसकी नाँवें खुदा है । परन्तु उसका नाँवें आदि प्रयोगों में यह शब्द पुल्लिंग ही बहुधा मिलता है । इश्क का चश्म बेपरवाई, यादगार हो अछेगा, अकल अपना सँभाल पाने का फिकर कर, देखने का बात, और जागा ना या आशनाई का शरम, दिये का पिरीत, बुनी एक पल्लंग ।

इसी तरह शराब, खबर, सूरत, दुनिया, आबाज़, इमारत, उम्र, मुश्किल, दाद, कुदरत, ज़रूरत, दवा, हकीकत, हालत, पुल्लिंग

में इस्तेमाल हुए हैं और खयाल स्त्रीलिंग में। निश्चय ही इस प्रकार का व्यत्यय हिन्दी की अन्य बोलचाल में भी पाया जाता है।

साहित्यिक खड़ी बोली के अन्य पुराने ग्रन्थों की तरह दक्खिनी में सर्वनाम शब्दों की बहुरूपता मिलती है।

सर्वनाम कुछ उदाहरण पेश किए जाते हैं।

(१) उत्तम-पुरुषवाचक सर्वनाम में बहुवचन में हम हमें के अलावा हमन हमना रूप भी इस्तेमाल में आए हैं और इनका अर्थ विकारी विभक्ति का या अविकारी का या विशेषण का हुआ है जैसे--

हमन (हम) ते, हमना ते, हमना उपर, हमन (हमारे) स्वाब में, हमना (हमको) क्या काम, सो हमना (हमें) देखे, हमन (हमारे) संग, हमन (हमारे) पाप ते, हमन को। एकवचन के रूप मुजकों, मुंजे आदि में 'ऊ' का ज हां जाना दक्खिनी में स्वाभाविक ही है। पर एक स्थान पर मु सों (मुझ से) रूप भी मिला है।

मध्यमपुरुष में भी तुमन, तुमना रूप उत्तमपुरुष के हमन हमना के वचन के मिलते हैं, जैसे तुमन बिन। तुमरे, तुमारी रूप में महाप्राणत्व का लोप हां गया है। एकवचन में तुज, तुऊ, तुजे आदि रूप हैं और तुज रूप तेरा तेरे के अर्थ में भी इस्तेमाल हुआ है, जैसे तुज इस्म (तेरा इस्म), तूज (तेरे) बिन। अन्तिम उदाहरण में स्वर की दीर्घ मात्रा छन्द के कारण कर दी गई है।

अन्यपुरुष के एकवचन में अकसर वो रूप मिलता है और कभी कभी ओ और वह। सो भी बहुधा दिखाई पड़ा है। कर्म-वाचक उस, उसे के स्थान पर कई रूप मिले हैं।

बो करे सो होय । आपी किया उसे (उसका) क्या इलाज ।
उसों, उसों, तिसपर । लगी बोलने यों मिटे बोल उसों(उसको) ।
बहुवचन में विकारी और अविकारी दोनों विभक्तियों में उनो,
उनों रूप बहुधा मिलता है, जैसे—

उनो भी बात को खोले हैं, उनो को, उनो ते, उनन दोई के
पौंव पर । एक स्थान पर उने वह के लिये इस्तेमाल किया
गया है ।

(२) दूरनिर्देशवाचक सर्वनाम भारतीय भाषाओं में अन्य-
पुरुषवाचक के ही रूप ग्रहण करता है । निकट-निर्देशवाचक के
यो, ये, ए, यह, इने रूप मिलते हैं, जैसे—

न यो इसे देख्या न वो उसे जाने । ए बात । ये ज्योती । यो
दो । और खाकी इने ।

(३) सम्बन्धवाचक सर्वनाम के एकवचन में जो, जिसे
आदि और बहुवचन में जिने, जिनो आदि रूप हैं, यथा—

जो—सो । जिने कुछ समज्या...उने अपनी जागा राख्या गुन ।
जिने सुन्या उने घायल होना है । जिनों समजते हैं । जिनों की नेकीः

(४) निजवाचक सर्वनाम के बहुतेरे रूप मिलते हैं । यथा—
एक अपे अपन्याँ एत्याँ मूरतियाँ ।

अपे अपस कों देखे, अपे अपस ते अपस कों छिपावे, इधर
भी अपे उधर भी अपे, अपे तरसते अपें तपते । अपे भी फ़र्माई ।
सब आपस में अपे चार । अपसैं (अपने आप) । आपी आप
(आप ही आप) । आपी किया उसे क्या इलाज । अपस सों
अपे । आपने (अपने) घर मने (में) ।

कभी कभी निजवाचक सर्वनाम की जगह पुरुषवाचक सर्व-
नाम ही प्रयोग में आया है, यथा—

मुँजे तेरी (अपनी) बेटी को दे शाद कर ।

ऐसे प्रयोग मालवी आदि अन्य बोलियों में भी मिलते हैं ।

(५) परवाचक सर्वनाम और और समुच्चयबोधक अव्यय और में साहित्यिक खड़ी बोली में कोई भेद नहीं किया जाता पर दक्खिनी में परवाचक और है तथा समुच्चय-बोधक और, यथा--

किसी और के होते । और खाकी इने ।

(६) प्रश्नवाचक सर्वनाम अप्राणिवाचक क्या का और प्राणिवाचक को, कौन, कवन है । बहुवचन का रूप किन है, यथा किने ।

(७) सर्वबोधक सर्वनाम सब, सभी हैं ।

(८) अनिश्चयवाचक अप्राणिबोधक कुछ (कुछ) और प्राणिबोधक किने, कोई, किसे आदि रूप हैं, यथा—

मुहम्मद की जागा किने (कोई) पाये ना ।

किसे (किसी को) क्या कुदरत ।

कूच में स्वर की दीर्घमात्रा छन्द के कारण है ।

(९) सम्बन्धवाचक और अनिश्चयवाचक को जोड़कर बोलने का जो चलन उत्तर भारत में है वह दक्खिनी में भी मौजूद है । इनमें जो का कभी कभी जु हो गया है, यथा—

जु कोई, जु कुछ, जु कुच ।

(१०) सर्वनाम-विशेषणों में साहित्यिक खड़ी बोली में -ना, -नी वाले रूप (जितना, जितनी, जितने) ही मान्य हैं, पर दक्खिनी में ये कम मिलते हैं और साधारण बोलचाल के (-ता, -ती -ते) रूप अधिक, जैसे—

सिफत करे कोई कितेक, जेती ।

येता, जेती तेती, केता ।

एते रंगों एतियाँ सूरतियाँ ।

जिते विते । एते चाले ।

स्त्रीलिंग के विशेषणों के बहुवचन में भी -याँ प्रत्यय जोड़ा जाता है, ऐसियाँ, जैसियाँ, एतियाँ, तेतियाँ ।

संख्यावाचक शब्दों के भी कई ऐसे रूप मिलते हैं जो साहित्यिक खड़ी बोली में मान्य नहीं । एक के लिए एकस रूप भी था,

जैसे एकस का, एकस कों, हर एकस कों । एक

संख्यावाचक का छोटा रूप एक भी पद्य में प्रचलित है ।

दो के लिए दोइ, दोय रूप भी मिले हैं ।

ग्यारह की जगह एग्यारह और पच्चीस के लिए पचीस । नव्वे के लिए नवद (सं० नवति) और निन्यानवे के लिए नवद नौ (सं० नवनवति) ये रूप प्रयोग में आए हैं—

नवद पर गई तब जनियाँ पास मैं ।

नवद नौ हैं तुज नाँव यक नाँव मैं ।

दोनों, तीनों के लिए अनुस्वार-रहित रूप दोनो तीनो मिले हैं । दूसरा के लिए दुसरा, दूजा और तीसरे के लिए तिसरे ये रूप ग्रन्थों में आये हैं । दुगना तिगुना की जगह दुगुन तिरुगुन इस्तेमाल हुए हैं ।

ही का अर्थ साहित्यिक खड़ी बोली में पूरा शब्द जोड़कर किया जाता है (किताब ही, सभी, आप ही) पर बोलचाल में

केवल -ई बहुधा ही की जगह ले लेता है
बली रूप (किताबी, आपी आदि) । दक्खिनी में

भी कहीं कहीं -ई या -ईं ही मिलता है, जैसे—

आपी, आपीं, हमी, तुमी ।

अन्यथा ही हीं वाले रूप (तूँही, तुहीं) भी मिलते हैं ।

इनके अलावा -च, -छ में अन्त होने वाले इसी अर्थ के शीतक रूप बहुनायत से मिलते हैं, यथा--

खुदा मना किया सो बुरे फेलाच खातिर ।

यों च यार कों यार कैते ।

यों च, नहीं च, पिउ च, ऐसे च, देखते च सुनते च, तूँ च ।

माती च हैगी यो सवाद की बात ।

बहुते चा लजीज़ । उसीच का ।

यो छ, अपनी छ । काम होता छ भला । मँगने छ पर आवे ।

यहाँ छ बनेछ ।

एक आध जगह -ज वाले रूप—अन्तर ते ज—भी मिले हैं ।

हिन्दी के पुराने ग्रन्थों में परसगों का उतना प्रयोग नहीं मिलता जितना वर्तमानकाल में । १६२३ में हमने इण्डियन ऐंटी-

क्वेरी में “रामायण में संज्ञा-रूप” नाम के

परसग निबन्ध में यह दिखलाया था कि आज की

तुलना से तुनसीदास की रामायण में पर-

सगों के प्रयोग का अनुपात केवल २५ प्रतिशत के करीब है ।

प्रायः ऐसी ही स्थिति दक्खिनी के पुराने ग्रन्थों में मिलती है ।

नीचे के उदाहरण देखिए--

छुपाने खातिर, बहलाने खातिर, मिलने खातिर, साहब पास, किसी ना दिखलावे किसी ना सुनावे, दम मारने या किसी नै मजाल, सबरस सब को पढ़ने आवे-हवस, उस यादगार, यकायक चलने किसकी मजाल, किसी जुदा न कर, हुन्दी रस्कते, लैला मुँह बात, इन बोलो शुरू किया, किस काम न होय, दिल पीछे, उस आछें, जिस सिफ़ात, इस (की) तफ़मील, तिस मदाह, जिन्ह खालिक, हर भाती कहा ।

(१) कर्तृवाचक परसर्ग ने का प्रयोग अनियमित है। वर्तमान में जहाँ इस्तेमाल होता है, वहाँ दक्खिनी में यह नदारद है, और जहाँ नहीं होना चाहिए वहाँ मौजूद है, यथा—

खुदा के दोस्ताँ ने बोले हैं। वासिलाँ ने बोले हैं। रौर ने समजी। उनों भी बात को खोले हैं।

अक़ल दिल को दिया है पादशाही।

बादशाह शराब पिया।

ने की जगह कहीं नी भी मिलता है।

कर्मवाचक परसर्ग को की निस्वत कों अधिक इस्तेमाल में आया है--

जहालत कों, ज़रूर कों, किसी कों नैं मिले।

(२) करण-अपादानवाचक का रूप केवल से नहीं है, इसकी निस्वत सों, ते, थे, सती, सते, सेती, सात आदि रूप अधिक मिलते हैं, जैसे—

लताफ़त सती खोल मीठी ज़बाँ।

कामों सते।

अपस सो, सब सों। माक़ूल जिस सों।

इस घात सेती।

कह्या मेहरबाँ हो तब उस सात नाग।

किसी के करने ते।

बन में थे। अदम में थे।

कादिरा ने गुजराती से प्रभावित दक्खिनी में सोय का भी प्रयोग बताया है, यथा निहायत सोय।

(१) सम्प्रदान का वाचक अधिकतर स्त्रातिर है, पर तईं भी मिलता है, यथा--

अपनी स्त्रातिर को ।

समुन्दर के तईं ।

(४) साहित्यिक स्त्री बोली में सम्बन्धवाचक परसर्ग के रूप केवल का, की, के हैं, पर दक्खिनी में रूप-बाहुल्य है । विशेष-कर केरा, केरी, केरे रूप भी मिले हैं, और स्त्रीलिंग के बहुवचन में क्यों रूप पाया जाता है । देखिए--

उनन के मोछ्यौं ।

उनों क्यों अँखियौं ।

खुरासान क्यों कुमरियौं । दिल के फ़ायदे क्यों बहुत बातों है ।

कि बाताँ यो सुनकर मेरी ग्यान क्यों ।

उस राज कों (के) ।

कि है चाकरी मर्द केरा सिंगार ।

मोहब्बत केरा मय जो पीता अहै ।

मोहब्बत केरे मय को पीता अछूँ ।

सलासत नहीं जिस केरे बात में ।

अजब तेरे कुदरत केरे काम हैं ।

(५) अधिकरण के परसर्ग में के अलावा मने, मियाने, महँ, महिँ आदि और पर के अतिरिक्त पो, उपर, उपराल अधिक प्रचलित हैं, जैसे--

इन दोनों में ।

हर यक शय मने ।

जिस पो, मुइँ पो, पावौँ पो ।

किस उपर, मुँज उपर, उस उपर, सब उपर ।

मुँज उपराल ।

दक्खिनी का वर्तमान साहित्यिक खड़ी बोली से खास भेद क्रिया में है ।

क्रिया (१) स्टैंडर्ड हिन्दी के कर्मवाच्य के भूत-काल में क्रिया का वचन और लिंग, कर्म के अनुरूप होता है, पर दक्खिनी में वहाँ भी कर्ता के ही अनुरूप, कर्तृवाच्य की तरह रहता है । देखिए—

उसे लोग तो लइ वज़ा सों डराए ।
 साहब आस्मान ज़मीन ने फ़र्माये ।
 हुज़ूर बुलाय पान दिये और फ़र्माये ।
 नबी बात यो सुन कहे जाय चल ।
 जिते आक़िलौं ने अक़ल दौड़ाए ।
 वो देना याँ पाक है आरिफ़ाँ ने क़बूल किये हैं ।
 ख़िलाफ़ नैं किये । पैदा किया ज़मीन ।
 क्या बली क्या नबी सिजदा किये उस ठार सभी ।
 जिसे खुदा दिया सफ़ाई उसे आई ।
 जो कोई यो बाट पाया । धनी जो धरती धरया ।
 मैं तो यो बात नैं किया हूँ,
 ईसा होकर बात को जीव दिया हूँ ।
 काम बहोत खास किया हूँ ।
 हुस्न परी हिज़ करी ।
 ग़ैर दिल को समजाई ।
 मेरे हक़ पो तू कुच बी नेकी न की ।
 खुदा का हुआ खेल कैसा देखी ॥
 क्या जाने क्या गुनह की थी अक्वल ज़माने ।

वह महताब सा मुख जो उसका निम्काई ।
 इन छिनाल ने मुक्त मारी,
 इन छिनाल ने मेशा घर धाली ।
 उनने आखिर मरद को गँवाई ।
 यो तकसीर तेरा सो बखशी हूँ मैं ।
 उनो ने अपना नफा लींचे ।
 दिया इश्क ने आरायश ।
 तूँ धोया गुनाहाँ ।
 जो कामों किया है शुजाअत के तूँ ।

(२) निष्ठा—निष्ठा का पुलिग एकवचन रूप साहित्यिक खड़ी बोली में आकारान्त धातुओं को और कुछ औरों को छोड़ कर (लाया, आया, गया, किया) सब जगह -आ में अन्त होता है, पर दक्खिनी में आ वाले रूपों के अलावा -या वाले रूप भी बहु-तायत से पाये जाते हैं । उत्तर भारत की खड़ी बोलचाल में भी यही स्थिति है । दक्खिनी के उदाहरण देखिए—

जान्या, जुड़्या, पूछ्या, विचार्या, धर्या, पहचान्या, बोल्या,
 दौड़्या, कर्या, रस्या, सिर्ज्या, लग्या, भर्या, भेघा, देख्या, ल्याया,
 लाइया, कह्या, सह्या, किया, चीन्त्या, बैसला ।

इसके बहुवचन के रूप पुलिग में -आ -या के स्थान पर ए का आदेश करके खड़ी बोली की तरह बनते हैं । स्त्रीलिङ्ग में एक वचन- ई के आदेश से और बहुवचन- याँ के आदेश से बनते हैं, यथा—

दिई भेज । ध्या ।

बुलाया तो आयौँ घर उसके बेत्यौँ ।

ओ हँस पड़्यो खोल मों ।

सो वे उट खड़्यो हीर कझों ।

(३) वर्तमानकालिक (शठ) रूप खड़ी बोली में पुलिंग में -ता में अन्त होते हैं पर दक्खिनी में -त में भी पाए जाते हैं । अन्य कुछ रूप ऐसे भी हैं जो आज खड़ी में नहीं दिखाई पड़ते पर बंगालियों में मिलते हैं, जैसे—

होता सब खुदा का माता । देरुया जाता । जिउते कों ।

इश्क अब भावता खयाली है । स्त्री० लावती । होवता !

बहुवचन में लावते, जावते । दो दिल एक दिल होतें ।

न गमता देखत वक्त हैरों हुई ।

स्त्रीलिंग का बहुवचन एकवचन के -ती के स्थान पर -त्यो का आदेश करके बनता है, जैसे—

दायम भगइत्यो जो बुलबुलों लड़त्यो ।

चारों तरफ से बरसत्यो गालियो ।

हमों करत्यो हैं । गमात्यो ।

असील औरती अपने मरद बगैर दूसरे को अपना हुस्न देखलाना गुनाह कर जान्त्यो हैं, अपने मरद को हर दो जहाँ में अपना दीन च ईमान कर पहचान्त्यो हैं ।

(४) भविष्यकाल के रूप खड़ी की तरह -गा, -गी में अन्त होने वाले अधिकतर मिलते हैं, पर थोड़े से रूप -स वाले भी ग्रन्थों में मौजूद हैं । देखिए—

खागा । कझा जायगा । देओंगा । येलागी । ल्यायगा । सकेगा तुँ ।

खुदाये ताला दिखलायेंगा । दिल का शक जायेंगा ।

निकलसूँ ; लेसूँ (छत्तम० एक०) । न रहसे हमन यों ।

खुदा को इस नज़र सों देख्या ना जासी ।

खुदा नज़र में ना आसी ।

इस किताब को सीने पर ते हलासी ना ।

इस किताब बगैर कोई अपना वक्त भुलासी ना ।

जेते गुनकारों होयसन ।

न होसी हुनर इस वज़ा किस सती ।

न करसी क्रदम कोइ अँगो इस सती ।

पुंजसे न यहँ (यहाँ न पैदा होंगे) ।

अच्छसे (होंगे) ।

चलसे (चलेगा) । जरोसी (हज़म होगी) । न होसे (न होगा) । तूँ ना होसी ।

(५) पूर्वकालिक क्रिया के रूप साहित्यिक खड़ी बोली में आज धातुरूप के बाद कर, के जोड़कर बनाए जाते हैं, पर बोलियों में प्राचीन काल के पूर्वकालिक रूप (ल्यबन्त) की -इ अब भी मौजूद है। यह दक्खिनी में भी पाई जाती है। इसके अलावा कर या के के अतिरिक्त को भी जोड़ा जाता है, यथा—

हुज़ूर बुलाय पान दिये । मिला के एक करे । उतर आयकर ।
ल्यायकर । मिल को । होय कर । होय को । तसलीम कर कर ।
चल्या राय को लेको जीता वहाँ ।

(६) क्रियार्थक संज्ञा—खड़ी में इसका अविकारी रूप -ना है और विकारी -ने । पर दक्खिनी में -न में अन्त होने वाले रूप भी मिलते हैं, यथा—

करन जायगी ।

लगा देवन । सोवने । बोलन । किसी के करन ते क्या होय ।

पानी पिलान (पानी पिलाने) ।

जावने (जाने) । आवना जावना ।

कहीं कहीं जहाँ आज खड़ी में अविकारी रूप आता है वहाँ दक्खिनी में विकारी का प्रयोग मिला है, जैसे---

मैं भी चुलबुलाने जानती हूँ ।

तो भी यकायक चलने किसका मजाल ।

(७) साहित्यिक खड़ी में सक्र- धातु के पूर्व पूर्वकालिक क्रिया-का धातु-रूप लगाया जाता है, पर दक्खिनी में अधिकतर क्रिया र्थक संज्ञा का विकारी रूप मिलता है, यथा---

सिर उसका तूँ सकता है ल्याने अगर ।

करने सके ।

खड़ी में आज सक्र- धातु एक सहायक क्रिया के रूप में ही इस्तेमाल होती है, पर दक्खिनी में जगह जगह यह स्वतन्त्र रूप से प्रयोग में आई है । ऐसे स्थानों पर कर सकने का अर्थ है, यथा---

खुदा सकता । सकेगा तु ।

(८) कर्तृवाचक संज्ञा--यह साहित्यिक खड़ी बोली में -वाला जोड़कर बनाई जाती है, पर दक्खिनी में अधिकतर -हारा -हार जोड़कर बनी है, यथा---

मिलनहारा, धरनहार, सिर्जनहार, करनहारा, जानहाग, अन्ननहार, समजानहारा, समजानहारे, चलनहारे, बोलनहारा च । रहनहार ।

लेनहार खेलनहार एक ।

पैदा करनहारे ने यों पैदा किया पैदायश ।

(९) सहायक क्रिया—स्टैंडर्ड हिन्दी में इसके रूप सीमित हैं (वर्तमान हूँ, हैं, हैं, हो; भूत था, थे, थी, थीं; भविष्य हूँगा, हाँगा, होंगे, होगी, होंगी) पर दक्खिनी में इनके अलावा अछ-, अह-, अथ- रूप भी काफी मिलते हैं, देखिए---

तुँ उसकी इबादत में दिनरात अच (हो, रह) ।

अछ (है), अछे (रहे), हो अछेगा, अछता, अछते हैं,
अछती । अछता है, अछना । अछो (हो), अछसे (होंगे) ।

खास अछो या आम (हो) । आया अछै (है) ।

औरत गर सुघड़ अछी ।

जो जग में सदा काल जीता अछूँ ।

नहीं मिलकर अचत यो दो एक ठार ।

जो फ़ीरोज़ महमूद अचते जो आज ।

अथे दो जने । रतन यो अथे ।

अथ्या । अथी ।

थ्यों (थीं) ।

अहं तूँ अथा तूँ अछेंगा तुहीं । रचे तूँ रच्या तूँ रचैगा तुहीं ।

शर गचें लै लोग जोड़े अहैं । बुरे भाँत हीर खूब थोड़े अहैं ।

कोई क्यों उसे कहे है कि यों है खुदा है ।

अहैं है ।

हंगी ।

एक जगह मध्यमपुरुष के साथ हैं का प्रयोग मिला है, होना चाहिए था हो,—

लंकर आये हैं तुम दगा दे इसे ।

(१०) प्रेरणार्थक क्रिया—इसके भी दो-चार बोलचाल के रूप पाए गए हैं, यथा—

देखलाता, दिखलाता ।

मुसल्मान कहवाते ।

(११) इच्छाथक धातु चाह -के अलावा चाव- और मंग- भी पाई गई हैं, जैसे—

चावे (चाहे) ।

अगर दिल मंग्या ।

जिसे ज्यों मंगता उसे वों रखता ।

अगर मंगता है दिल में मुहब्बत भरे शराब पी ।

अगर कुछ ऊँचा चढ़ने मंगता है तो शराब पी ।

(१२) साहित्यिक खड़ी बोली से बहुत भिन्न और अजीब सा एक प्रयोग कर के साथ दक्खिनी में मिलता है, देखिए—

इश्क की सुरत कैसी है कर क्यों कहा जाता ।

खुदा है कर तो बोल्या जाता ।

अँधारे को उजाला कर समजता ।

हम मुसल्मानों तुजे बड़ा कर जानेंगे ।

(दिल) किधर गया है कर धुँडने लग्या ।

मामला यों है कर बोल्या ।

तो उन लोड़ती हैं तुजे मर्द कर ।

यहाँ कर का इस्तेमाल कहीं यह ऐसा के अर्थ में, कहीं समझ कर के अर्थ में हुआ है । डा० अब्दुलहक कहते हैं कि ऐसा इस्तेमाल “मीर अमन के हों भी पाया जाता है ।”

दक्खिनी में क्रिया-विशेषण, समुच्चय-बोधक आदि अव्ययों के बहुतेरे प्रयोग स्टैंडर्ड हिन्दी से भिन्न हैं ।

अव्यय (१) स्थानवाचक क्रिया-विशेषणों में जधों,

तधों, कधन, कधीं, काँ, यों वों, वइँ (वहाँ) कई

आदि मिलते हैं, यथा—

इश्क कइँ नै खाली ।

इश्क कधीं आकिल कधीं ।

इसी तरह बाहर के लिए बहार, मार, बहेर, आगे के लिए आगें आधे भी पाए जाते हैं, जैसे—

अगर घर ते जो तूँ न निकले बहार ।

आगों के ।

संग के लिए सँगात, साथ के लिए सात (अदब सात), पास के लिए कने (हज़रत कने, मरद कने, सिपाही कन), तरह के लिए निमन (बाटसारू निमन), नेमे (मरद नेमे), नमेन (खुदा नमेन), घात (एक घात , बहु घात) जिस (माकूल जिस सों) और नीचे के लिए तल तथा ऊपर के लिए उपर, उपराल शब्द इस्तेमाल हुए हैं । नज़दीक के लिए नज़ीक मिलता है । बहुत के लिए बहोत, मौत बहुधा आया है । तक का अर्थ लक, लग (अपस बिसरे लग), लगन (आक्रबत लगन, आज लगन, जौ लगन) से होता है ।

(२) समयवाचक अव्ययों में ये ताल (इस समय) इतवार (इस मर्तबा), तिल (तिल ना देखे = क्षणभर न देखे), अताल (अब), अजहों (अब तक , आज तक) आदि बहुत से, स्टैंडर्ड से भिन्न प्रयोग मिले हैं ।

(३) प्रश्नवाचक क्यों के स्थान पर बराबर की (सं० किम्) इस्तेमाल में आया है और बेहतर के लिए बरी (सं० वरम्) यथा—

बरी की न मैं इस उचाकर ले जाऊँ ।

(४) निषेधवाचक नहीं, न के अलावा ना, नै , नको आदि मिले हैं, यथा—

ना दिक ना देस न हौँक न पुकार ।

खिलाफ़ नै किये । नै जले सो जले की बात क्या जाने ।

तूँ ग्राफ़िल न को अछ मेरे हाल ते ।

बिना के अर्थ में बाज (सं० वर्ज-) का प्रयोग बराबर हुआ है, यथा—

वहाँ दूसरा न था कोई अली बाज ।

समजे ना कोई आशिक बाज ।

उसके हुक्म बाज ज़र्रा कई नैँ हिलता ।

(५) समुच्चयबोधक और की जगह बराबर हीर इस्तेमाल हुआ है, यथा—

हुज़ूर बुलाये पान दिये बहोत मान दिये हीर फ़र्माये ।

वहाँ सब खाली हीर लबालब है ।

स्थानस्थान पर दक्खिनी में अव्ययों के बोलचाल के प्रयोग मिलते हैं। ज़रूर शब्द के साथ स्टैंडर्ड हिन्दी में कोई परसर्ग नहीं लगाया जाता, पर बोलचाल में उत्तर भारत में से कभी कभी सुन पड़ता है (ज़रूर से)। इसी तरह मुल्ला बजही ने कों लगाया है—

वहाँ औरत ज़रूर कों बेराज़ होकर मरद कर्ने सोती ।

ऊपर दिए गए विवरण से दो बातें साफ़ मालूम होती हैं ।

एक तो यह कि इस साहित्यिक दक्खिनी में रूपों की विभिन्नता

है जो कई बोलियों का सम्मिश्रण जतलाती

परिणाम है ।-सी, वाले भविष्यकाल के रूप पंजाबी के

से लगते हैं, पर इनकी निस्वतः ना गी रूप

ही अधिक हैं जो खड़ी बोली के ही निजी हैं । परसर्गों में से केरा,

केरी तथा अपेक्षित स्त्रीलिङ्ग के स्थान पर पुलिङ्ग का प्रयोग पूरबी-

पन का द्योतक है, पर ऐसे प्रयोग कम ही हैं ।-आँ में अन्त होने

वाले, संज्ञाओं के बहुवचन के रूप, विशेष रूप से खड़ी बोली

से भेद प्रगट करते हैं । पर सभी विभेदों पर सामान्य दृष्टि से

विचार करने से नतीजा यही निकलता है कि दक्खिनी, खड़ी बोली का ही पूर्वकालीन रूप है। प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने वाले जानते हैं कि अन्यत्र भी इस तरह का बोली-भेद मिलता है। उदाहरणार्थ पालि भाषा में ही व्याकरण और ध्वनि सम्बन्धी एक-रूपता नहीं है। फिर दक्खिनी में कैसे होती जो आरम्भ-काल में विदेशी ग्रन्थकारों के ही हाथों में रही और जिसने उस समय की अन्य साहित्यिक भाषाओं से नीचे का ही दर्जा पाया था।

अगले व्याख्यान में दक्खिनी के ग्रन्थों की शैली की विवेचना और साहित्य का सिंहावलोकन किया जायगा।

शैली तथा साहित्य

शैली

पिछले व्याख्यान में दक्खिनी भाषा पर विचार करते समय देखा गया है कि इसका जो रूप पुराने ग्रन्थों में मिलता है उसमें काफी बोली-भेद है, व्याकरण के रूपों की बहुलता मिलती है और यह नहीं कहा जा सकता कि कोई स्टैंडर्ड रूप प्रचलित था। इसी भाषा की यह रूप-बहुलता आज भी मिलती है पर बोल-चाल में। निजाम राज्य की सरकारी भाषा आज स्टैंडर्ड उर्दू है, पर वहाँ के ऊँचे अधिकारी भी दक्खिनी का ही बोल-चाल में प्रयोग करते हैं। उत्तर भारत से गए हुए बटोही को यह उच्चारण और व्याकरण का बोलीपन वहाँ तुरन्त दिखाई पड़ जाता है।

शैली के विचार में प्रधान बात शब्दावली की होती है। दक्खिनी के ग्रन्थों को देखने से पता चलता है कि उनमें अरबी फ़ारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द बहुत शब्दावली नहीं हैं और निश्चय ही आजकल की उर्दू में जितने मिलते हैं उनसे बहुत कम। यह सच है कि एक ही ग्रन्थकार के दो विभिन्न विषयों के प्रतिपादक ग्रन्थों में ही शब्दावली का भेद पड़ जाता है। दक्खिनी में

इस्लाम धर्म के प्रचारक (मीराजुल आशिकीन आदि) ग्रन्थों में अरबी शब्द ज्यादा हैं पर (सबरस आदि) कहानी क्रिस्से के ग्रन्थों में उतने नहीं। 'कुतुब मुश्तरी' की भूमिका में सम्पादक डा० अब्दुल हक लिखते हैं—

“फ़ारसी हिन्दी अल्फ़ाज़ का तनासुब एक और अड़ाई का पड़ता है और सारी मसनवी का यही हाल है।” (प० १८)

इसी तरह ग़वासी की मसनवी सैफुल्मलूक व बदीउलजमाल के सम्पादक लिखते हैं कि—

“ग़वासी के कलाम में हिन्दी अल्फ़ाज़ ब़यादा पाए जाते हैं।” (प० १३)

यही बात समान-रूप से दक्खिनी के अधिकतर ग्रन्थों के बारे में कही जा सकती है। बली 'आरंगबादी' के दिल्ली आने के पूर्व की कृतियों में देशी शब्द अधिक हैं, दिल्ली से लौटने के बाद की रचनाओं में विदेशी शब्दों का संख्या की मात्रा कुछ अधिक हो गई है। परकालीन ग्रन्थकारों की कृतियों में यह और बढ़ती गई है। कभी कभी तो कोई भी विदेशी शब्द नहीं दिखाई पड़ता; यह पद्य लीजिए—

बिरागी जो कहते हैं उसे धरबार करना क्या ।

हुई जोगिन जो कोइ पी की उसे संसार करना क्या ॥

जो पीवे प्रीत का पानी उसे क्या काम पानी छो ।

जो भोजन दुख का करते हैं उसे आघार करना क्या ॥

(कुल्लियात बली, प० ५५)

दक्खिनी हिन्दी के ये ग्रन्थ फ़ारसी लिपि में लिखे गए।

इस लिपि के कारण भी इन ग्रन्थों में फ़ारसी अरबी आदि विदेशी शब्द ज्यों के त्यों रह गए। बहुधा शब्द का लिखित रूप एक होता है और उच्चारण का प्रभाव रित दूसरा। बहुत सी फ़ारसी अरबी ध्वनियों उर्दू लिपि में मौजूद हैं पर उनका उच्चारण दूसरा होता है। ऐम (ع) का उच्चारण नहीं होता, पर वह बर्ण लिखने में उपस्थित है। इसी तरह तोय (ط) का उच्चारण ते (ت) की तरह और से (ث) का सीन (س) की तरह होता है पर लिखावट में ये बर्ण मिलते हैं।

दक्खिनी के ग्रन्थों में आदि-काल में कहीं कहीं अक्षर-विदेशी शब्द विन्यास उच्चारण के अनुकूल मिलता है। मिसाल के लिए मुल्ला बजही के ग्रन्थ सबरस में से कुछ शब्द लीजिए—

	सबरस में रूप	शुद्ध विदेशी रूप
आला	آلا	اعلى
दिक्कद, दिक्कत	دكد، دكت	دخت
तगादा	تغادا	تغاضا
नफ़ा	نفا	نفع
वज़ा	وزا	وضع
वाक्का, वाक्का	واقا، واحا	واقعة

सुल्तान मुहम्मद कुली कुतुबशाह बकरीद (بكرید) लिखते हैं, न कि बकरीद (بقرید)।

नीचे कुछ और शब्द दिए जाते हैं, जिनमें अक्षर-विन्यास उच्चारण के अनुसार है। फ़ारसी के अन्तिम ह के स्थान पर अधिकतर आ ही मिलता है—

	प्रन्थों में पाया गया रूप	शुद्ध रूप
इनाम	अनाम	अनाम
सात	सात	सاعت
अखल	अखल	عقل
अदमी	अदमी	أدمی
आरूस	आरूस	عروس
अन्देशा	अन्देशा	اندیشه
बजीद (जिद से)	बजिद	بهضد
पुस्ता	पुस्ता	پخته
पुरगम	पुरगम	پرغم
बगर	बगर	بغیر
खफा	खफा	خلف
नफा	नफा	دفع
सही	सही ' सही	صحيح
सुबा	सुबा	صبح
क्रिस्ता	क्रिस्ता	قصه
खाला	कहाला	خاله
फिकर वन्द	फिकर वन्द	فکرمند
हुनर वन्द	हुनर वन्द	هنرمند
दफ़े	दफ़े	دفعے
दावन	दावन	دامن
मुलाज़ा	मलाज़ा	ملاحظه
कायल	क़ायल	قائل
दावा	दावा	دعوی
फ़तवा	फ़तवा	فتوی

चकमक	چکک	چقماق
जमात	جمات	جماعت
मुलम्मा	ملما	ملیع
ज़िबे	ضیبه	ذبیح
मना	منا	منع
वस्ताद	وستاد	استاد
झाया	ضایا	ضایع
वख्त, बख्त	وخت, بخت	وقت
कुलुफ़	کلف	قفل
विदा, अलविदा	وداء, الودا	وداع, الوداع
क़िला	قلا	قلعه
नामा	ناما	نامه
बदख़	بدخ	بطاخ
नुख़्त	نکس	نقص
मनसा (वली)	منسا	منشا
नज़र	نزر	نظر
बिचारा	بیچارا	بے چاره
यह	یح	یہ

फ़ारसी अरबी शब्दों के कुछ ऐसे रूप मिले हैं जो आषा उर्दू की लिखित भाषा में नहीं मिलते पर जो बोलचाल में अरब भी सुनाई पड़ जाते हैं, देखिए—

ज़िन्दगानी, परेशानगी, मेहरवान (मेहबान), जागा (जगह), सबूरी, क़बूल, सूरत, नज़ीक, खाहीन खाही (खवाम खाह), जाब (जवाब), ख़ार (ख़वार) शहनाई (शाहनाई), बलक (बल्केह्), अजब (अज़ीब), जनावर (जानवर) ।

कुछ शब्दों का अक्षर-विन्यास निश्चय ही गलत है, जिससे साबित होता है कि लिपिकार अथवा लेखक विदेशी भाषाओं के अच्छे विद्वान न थे, यथा—

पीलाद (कौलाद), खसालत (खसलत), ज़िट (ज़िच),
नाज़क (नाज़क), खज़ीने (खज़ाने)।

कहीं कहीं छन्द की जरूरत के कारण भी शब्द अशुद्ध लिख गए हैं, यथा—

मशारे (मशबिरे), सफ़ा (सफ़ाई), सराफ़राज़ (सरफ़राज़), उस्ता (बास्ते), शातीर (शातिर), शौ (शौहर), हिम (हिम्मत), रवीश (रविश), ज़हार (जहर), शरमँदा (शर्मिन्दा)

विदेशी संज्ञाओं को लेकर उनसे क्रिया बनाने के कई उदाहरण मिले हैं, जैसे—

फ़ाम (फ़हम) से फ़ामना = समझना

रंज से रंजानते = रंजीदा करते

नवाज़ से नवाज़ना = कृपा करना

तलाशना = तलाश करना ।

गुमना = खोजना

ख़र्च से बनी नामधातु के रूप साहित्यिक भाषा में आज नहीं मिलते, पर बोल-चाल में मिलते हैं। उसी तरह दक्खिनी में भी मिले हैं, जैसे—

ख़र्चा जावेगा = ख़र्च किया जायगा ।

बख़श-धातु का एक दीर्घ रूप मालवी बोलियों में मिलता है, वह दक्खिनी में भी मौजूद है—

बख़शायगा = बख़शेगा ।

बाज़ (بعض) का बहुवचन रूप बोल-चाल में मिलता है, वह दक्खिनी में भी मिला है—

बाज़े कहते हैं = कुछ लोग कहते हैं ।

कहीं कहीं विचित्र रूप भी दिखाई पड़े हैं । मुत्क का बहुवचन मुमालिक होता है पर मुलायक मिला है ।

दक्खिनी के ग्रन्थों में कहीं कहीं विदेशी शब्द को देशी के साथ मिला कर बनाया हुआ समास भी मिलता है, यथा—

गुलवाड़ी = फुलवाड़ी

खुशालखन = सुलक्षण, नेकचलन ।

इस विवरण से इतना स्पष्ट है कि विदेशी शब्दों का समावेश उस समय जीती-जागती भाषा में किया गया था और अभिप्राय था उस भाषा में चतुराई से भाव प्रकट करना न कि विदेशी भाषा के रूपों और मुहाबिरों को ज्यों का त्यों रखना ।

दक्खिनी के ग्रन्थों में भारतीय शब्दों का केवल अनुपात ही अधिक नहीं है, बहुतेरे शब्द तत्सम रूप में मिलते हैं जो आज साहित्यिक उर्दू में मतरुक हैं, देखिए—

	अंग, अंगन, असंढ, अशर, अचल, अम्बर,
भारतीय तत्सम	अन्तर, अपार, अवतार (उच्छ कोटि का),
शब्द	आदि, आधार, अनन्त, उपकार, उपचार,
	अपरूप (अद्वितीय), उत्तम, काच, काल, कला,
	कुच, कुजल, कुन्तल, गगन, गज, गम्भीर, मास, धन, झल,
	छन्द, तुरंग, दानी, दिक, धरित्री, धनी, धीर, चतुर, दल, देह, नारी,
	पवन, वर (श्रेष्ठ), परमेश, पुरुष, वस्तु, भाव (इज़्जत), भानु, मान,
	रोमावालि, वादी, सन्मुख, सूर, सेवक, हस्ति (हाथी), तेज (शान व

शौकत), दार (दारा = घर), दया, दिवाकर, संभोग, स्वाद, सम, संग्राम, सुरंग (अच्छे रंग का) ।

दक्खिनी हिन्दी के व्याकरण पर विचार करते समय ऊपर कहा जा चुका है कि इन ग्रन्थों में हिन्दी की तद्भव शब्द षोलियों का रूप-बाहुल्य मिलता है। इसी तरह शब्दावली में भी रूप बाहुल्य हैं। एक ही शब्द तत्सम (संस्कृत अथवा फ़ारसी-अरबी) रूप में एक जगह मिलता है तो दूसरी जगह तद्भव रूप अनेक हैं। कुछ उदाहरण देखिए—

अपहारी अपहारी (अप्सरा), अदिक अदिक अधिक, अदरमान (आदर मान), अस्तोत (स्तुति), अमत (मत-धर्म-हीन), अम्रीत (अमृत), उलास उलासा (उल्लास), आँव (आम), अवकल (बेकल), अलक (अलख, अलक्ष्य), आँधारा (आँधरा), अन्मनाना (अन्यमनस्क होना), उरगन (उडुगण—तारे), उकल (विकल), औलखन (अलक्षण), कुजात (विजाति), छन्द (उपाय), जगावना (जगाना), जालना (जलाना), तिर्गुन, तिलोँक, दरसनी (दर्शन करनेवाला), तत्ता (गरम), दीवा दिवा (दीप), दिपाना (रोशन करना), दुकाल (दुष्काल), दुन्दी (दुश्मन), दिशत (दृष्टि), कशत (कष्ट), धरत धरती धरित्री, धाना (दौड़ना), अभाल (बादल, अन्न), घड़ी करना (तह करना), घिउ (घी), जिउ (जी, जीव), चितारा (चितेरा, चित्रकार), चूला (चूल्हा), ऋर (स्नोत, भरना), नवाना (भुकना, भुक्नाना), नँह (नख), नित (नित्य), निरासा, निजीव, निर्मोल, नेम धरम (नियम धर्म), पत (इच्छत), पतियारा (विश्वास), पन्त (पन्थ), परते (सामर्थ्य), परदल, परकाज, परदुख, परविभंजन, पहिराना (पहनाना), घात (प्रकार, तरह), सुलगा (सुलग्न,

मानूस), उमस (उत्साह), उसास (साँस), रूस (रोष), औघरम (बेध-रम), रेल छेल (रेल पेल), पायक (दूत), बाईं (बापी, कुर्वाँ), नवल नषा नषी (नया नई), अगला (बढ़िया), बाड़ा (मुहल्ला), खासा (अच्छा), पेखना (देखना), फोकट, बाट, बाट-पाड़ (बटमार), बाट-सार (मुसाफिर), बाव बाउ (वायु), विचित्र (चित्रकार), बिसरात (बिस्मृति), बेगि बेगी (जल्दी), मान (बहिन), मिआव (विवाह), मुअंज मुअंग (मुजङ्ग), भुईं (भूमि), म्याने मने (बीच में), मतना (मत्त होना), मया (प्रेम), मनहर (मनोहर), मूड़ी (सिर), यदी (यदि), यकंग (एकंग), रगत (रक्त), रज (रजोगुण, जोश), रन खाम (रण खंभ), रसरी, राकस (राक्षस), रुच रुछ (रुचि इच्छा, चमक), रूत (ऋतु), रैन (रजनी), रीज (रीझ-इच्छा), न्हाटना न्हासना (नाश करना), नहनपन (बचपन), विसलाना (बैठाना), बैसना (बैठना), पैसना (घुसना), उतराई (बदला), अच्चर अच्छर (अक्षर), अबूफ, अरत (अर्थ), उपासी (भूखा), अगिन (अग्नि), नीहचह (निश्चय), छव (छवि), माटी (मिट्टी), ससा (शश), संघाती (संघी), सीस (सिर)।

जिस तरह फ़ारसी अरबी शब्दों के रूप विकृत अवस्था में विकृत शब्द मिलते हैं उसी तरह भारतीय शब्दों के भी यथा—

म्हाड़ी (मदी), मंघिर (मन्दिर), सिंघार (सिंगार), बढाई (बढ़ई), लुब्दाइया (लुभाया), चिनगी (चिनगारी), सैसार (संसार), पुन (पुण्य), परधान (प्रधान), समुद (समुद्र), हत हस्त (हाथ), घाबरा (घबड़ाया), घीक. (धीरज), सुना (सोना), सुन्गार (सुनार), रीच (रीछ),

सुल (शूल), वरौं बेरौं (बेला-समय), कँथा (कथा), सजान (सजन), घास (घास), हड़ (हड़्डी), हंडी (हॉडी), सुलर (सुधर), सोरेज (सूरज), देस (दिवस), डींग (डग—कदम), सकत (शक्ति), सोरात (स्वार्थ), खम (खंभ), घरदार (घर-बार), लत (लात), सगट (सकल) ।

कुछ क्रिया-शब्द जो साहित्यिक शैली में हिन्दी में नहीं नप क्रिया-शब्द मिलते, दक्खिनी में मौजूद हैं, जैसे—

उचाना (ऊपर उठाना)

दिसना (दिखाई देना)

हेरना (खोजना)

सारना (प्रयोग में लाना)

सादना (प्राप्त करना)

सरना (पूरा होना)

सपड़ना (बनना)

लूड़ना (चाहना)

लाना (लगाना)

निपचाना नुपचाना (पैदा करना)

चितरना (चित्रित करना)

हँकारना (निकालना)

पाड़ना (डालना)

मेदना (पसन्द करना)

गमना (बीतना, चलना), गमाना (बिताना)

चीन्त्या (सोचा)

रोलना (फैलाना)

जीउना (जीना)

माना (समाना)

हम तुम होना (बराबरी करना)

हुदरना (हिलना)

निम्नाना (देखना)

सोसना (सहना)

दक्खिनी के ग्रन्थों में बहुत से ऐसे शब्द हैं जो उत्तर भारत की साहित्यिक हिन्दी में क्या, बोलचाल में भी नहीं मिलते।

इनमें से कुछ आर्य-भाषा परिवार के हैं, पर अपरिचित शब्द कुछ अवश्य द्राविड़ या मुंडा परिवार की भाषाओं से लिए हुए जान पड़ते हैं। नीचे थोड़े से ऐसे शब्दों की सूची दी जाती है।

अनाचती (अनजाने)

अँपड़ना (पहुँचना), अँपाड़ना (पहुँचाना)

अंभू (अँसू)

अवा सवा (पेरा दौरा)

अपाड़ना (निकालना)

अपटना (बिगड़ना)

अरडावना (चिल्लाना)

अड़वाट (उन्मार्ग)

अड़नाँव (उपनाम)

अखंड (छल कपट)

अपंग (बहुत)

आटा, आट (सुरिकल, आफत)

उभाल (छलांग, बादल)

उषान (क्वार भाटा)

- औघृत (बहादुर)
 एलाड़ (इधर)
 कला (चीख पुकार)
 काकलोः (लालच)
 काँद (दीवार)
 कोड़ (मूर्ख)
 कौलियों (गीदड़)
 चाड़ (सदमा)
 चोड़ (हानि)
 ऋल (ईर्ष्या)
 ऋाड़ (वृत्त)
 ऋँप (छलांग)
 ऋाल (छलांग)
 ठार, ठहार (जगह)
 दड़ी मारना (चुपचाप बैठे रहना)
 दाट (सकृत्)
 घाड़ (मुसीबत)
 धनियारा (धोकेबाज)
 नबतर (बहुत बुरा)
 पेलाड़ (दूर)
 माक (माणिक्य)
 रोजौट (शासन)
 मूप (नक़शा)
 रावाँ, रानवाँ (तोता)
 लहुवा (तलवार)

सौंदी (पागल)
 हेडा (मांस)
 जम (हमेशा)
 खो (गड्ढा)
 बेकटर, बेकड़ (कठोर)
 रीस (ईश्या)
 लुहाटी (कोयला ?)
 चैंघोरी (चोटी)
 बूँट (अंगुल)
 कुँबल (बड़ा)
 पाच (जाला)
 नीट (दोस्त)
 बलबलिया (खुशामदी)
 नन्हवाद (बच्चा) ।
 धेर (तरफ) ।
 रास (ठीक) ।
 डोसा (बुड्ढा) ।

इनके अलावा अन्य भारतीय भाषाओं के प्रत्यय भी लिए गए हैं, जैसे ये शब्द--

तैरालू (तैरने वाला)
 डरालू (डरने वाला)
 घरघालू (घर बर्बाद करने वाला)
 उतारू (तैयार) ।

शब्दावली के द्वारा भाषा का रूप बदल जाता है । हिन्दी

और उर्दू के वर्तमान स्वरूप में जो भेद है, वह अधिकतर इसी पर निर्भर है। पर शब्दावली के अतिरिक्त व्याकरण-रूप व्याकरण-रूपों पर भी भाषा का स्वरूप आश्रित है। यदि विदेशी शब्दों को देशी व्याकरण-रूप दे दिए जायें तो वे शब्द स्वदेशी शब्दों में घुल-मिल कर कालान्तर में स्वदेशी से लगने लगते हैं और जनता को भेद नहीं मालूम होता। अँगरेज़ी का स्टेशन शब्द हिन्दी में आ गया है। उसका हिन्दी रूप टेसन (अवधी टेसनि, टेसनिया) है और उसका बहुवचन टेसनें (अवधी टेसनिन, टेसनी) है। अँगरेज़ी पढ़े-लिखे हिन्दी भाषी स्टेशन और बहुवचन में स्टेशंस बोलकर इस शब्द के स्वदेशी हो जाने में बाधा डालते हैं।

ऊपर बताया जा चुका है कि दक्खिनो के ग्रन्थकारों ने विदेशी शब्दों को लिया तो है पर उनमें बहुत जगहों पर स्वदेशी ध्वनियों को अपरिचित विदेशी ध्वनियों के स्थान पर रख दिया है : बकरीद, तगादा आदि उदाहरण हैं। इसी तरह बहुवचन बनाने में भी स्वदेशी प्रत्ययों को अपनाया है न कि अरबी के वजन पर बहुवचन बनाकर शब्दों को मोअररब किया है। फ़ारसी संज्ञा अथवा विशेषण लेकर उनसे क्रियाएँ हिन्दी के नियमों के अनुकूल बनाई हैं। इनके उदाहरण ऊपर दिए गए हैं।

कभी कभी चिर-परिचित और परम्परागत एक-आध शब्द से ही पद्य की शकल भारतीय हो गई है। महबूब या माशूक के लिए लालन शब्द ऐसा है। इसका प्रयोग इन दक्खिनी ग्रन्थों में बराबर मिलता है। इसी तरह लौन (लावण्य) भी इन ग्रन्थों में प्रयोग में आया है।

शब्दावली और व्याकरण-रूपों के अतिरिक्त अन्य परम्पराएँ भी हर देश में रहती हैं। उदाहरण के लिए परम्परा-निर्बाह भारत में किसी को मनाने के लिए अथवा आदर-मान दिखाने के लिए पैर छूना, पैर पड़ना, पैर दाबना बराबर ग्रन्थों में मिलता है। कैंक्यो जब दशरथ से नाराज हुई तो वाल्मीकि ने दशरथ के मुँह से कहलवाया—

स्युशामि चरणावपि ते प्रसीद मे ।

(मुझ पर प्रसन्न हो जाओ, तुम्हारे चरण छूता हूँ ।)
कालिदास की शकुन्तला को मनाने के लिए दुष्यन्त कहते हैं—
संवाहयामि चरणावुत पद्मताम्रौ ।

(या तुम्हें प्रसन्न करने के लिए तुम्हारे पाँव दबाता हूँ ।)
प्रसन्न करने के लिए पाँव पड़ने का यह मुहाविरा कई ग्रन्थों में देखिनी में मिला है, जो सर्वथा भारतीय पुट है ।

वली के ये दो पद्य देखिए जिनमें भारतीय अलंकारों और पान खाने की परम्परा को किस प्रकार साहित्य में अमर किया गया है—

यह नैन तेरे मुझको दिसें जंजाली ।

और कान में बाला के नजिक यह बाली ॥

....

करता हूँ जों सुपारी क्यई हैं हाय जिसके ।

करने को दिल का चूना आता है पान खाकर ॥

प्रत्येक देश में कुछ कवि-सम्प्रदाय विकसित हो जाते हैं, जैसे कवि-सम्प्रदाय फारसी में गुल व बुलबुल का, भारत में कमल और भौरि का तथा चन्द्र और चकोर

का । दक्खिनी के ग्रन्थों में भारतीय कवि-सम्प्रदायों का बहुधा प्रयोग मिलता है, उर्दू में वह बहिष्कृत सा है । बली के ये पद्य देखिए—

विरह के बाग़ में दे आब दारी ।

हमेशा रल झड़ी नैनां की जारी ॥

कि खुरशेदे नबूअत की मदह में ।

कँवल का दिल खिला सीनः की दह में ॥

दक्खिनी के एक कवि का यह उक्ति लीजिए—

अगर नै है आशिक चकोर चाँद का ।

तो रातों को वो क्या सबब जागता ॥

कवि-सम्प्रदायों से अधिक प्रभाव डालने वाले प्राचीन कथानकों के उल्लेख होते हैं । भारतीय परम्परा में सीता की सी एतिपरायणता और चरित्र-साधुता, राम की सी कर्तव्य-निष्ठा तथा हनुमान की सी स्वामि-भक्ति अन्यत्र नहीं दिखती । उर्दू के ग्रन्थों में इस भारतीय पुट का सर्वथा अभाव मिलता है । पर दक्खिनी के ग्रन्थों में ऐसा नहीं है । यद्यपि अधिकांश ग्रन्थ फारसी अरबी के ग्रन्थों के अनुवाद हैं या उनके प्रभाव से लिखे हुए, तथापि राम, सिया (सीता), हनुवन्त का उल्लेख इन ग्रन्थों में मिल जाता है । इसी तरह भारतीय नदियों, पर्वतों आदि का वर्णन और उनसे दी हुई उपमाएँ मिलती हैं । बली ने उज्जैन के वर्णन में सिप्रा नदी का सुन्दर वर्णन दिया है ।

भारतीय परम्परा में प्रियतम-प्रयसी का भेद और वर्णन स्पष्ट है । पुरुष की प्रेम-पात्र स्त्री और स्त्री का प्रेयसी का चित्रण प्रेम-भाजन पुरुष यह भारतीय परम्परा समस्त भारतीय साहित्य में अनुपम मिलती है ।

दक्खिनी के बहुतेरे ग्रन्थों में यही धारा मिलती है। मुहम्मद क़ुली क़ुतुब शाह ने अपनी प्रत्येक प्रेयसी पर कविता लिखी है। बली के ग्रन्थ में भी उनके उत्तर भारत में यात्रा करने के पहले के पद्यों में भी बली का माशूक स्त्री ही है। यह कविता देखिए—

मत गुस्ते के शोले सों जलते कों जलाती जा ।
 टुक मेहर के पानी सों यह आग बुझाती जा ॥
 तुझ चाल की कीमत सों नहीं दिल है मेरा वाकिफ़ ।
 ऐ नाज़ भरी चंचल टुक भाव बताती जा ॥
 इस रैन अँवेरी में मत भूल पड़ूँ तिस सों ।
 टुक पाँव के निछुवों की आवाज़ सुनाती जा ॥
 मुझ दिल के कबूतर कों पकड़ा है तेरी लट ने ।
 यह काम धरम का है टुक इसको छुड़ाती जा ॥
 तुझ मुख की परस्तिश में गई उम्र मेरी सारी ।
 ऐ बुत की पुजनहारी इस बुत को पुजाती जा ॥
 तुझ इश्क़ में जलजल कर सब तन को किया काजल ।
 यह रोशनी अफ़ज़ा है आँखें को लगाती जा ॥
 तुझ इश्क़ में दिल चलकर जोगी की लिया सरत ।
 एक बार अरे मोहन छाती सों लगाती जा ॥
 तुझ घर की तरफ़ सुन्दर आता है बली दायम ।
 मुश्ताक़ है दर्शन का टुक दर्स दिखाती जा ॥

बली के दिल्ली से लौटने पर यह वर्णन-क्रम बदल गया और कवियों का माशूक पुलिग में चित्रित परिशाम होने लगा। दिल्ली में बली की अच्छी क़दर हुई। उनके प्रभाव से दिल्ली-वालों ने फ़ारसी

छोड़कर हिन्दवी अपनाई। मीर का यह शेर देखिए—

खूगर नहीं कुछ यूँही हम रखतः गोई के ।

माशूक जो था अपना बाशिन्दः दकिन का था ॥

एक अन्य कवि ने कहा—

वली पर जो सखुन लावे उसे शैतान कहते हैं ।

इस तरह वली को हर प्रकार से आदर मान मिला । पर उन पर भी उत्तर भारत की दूषित फ़ारसी परम्परा का ऐसा प्रभाव पड़ा कि न केवल प्रेयसी का वर्णन ही प्रकृति-विरुद्ध हो गया बल्कि फ़ारसी-अरबी की शब्दावली का अनुपात भी बढ़ता गया । धीरे-धीरे वली के बाद के दक्खिनी साहित्य को प्रायः वही शकल हो गई जो उदूँ की है । दक्खिनी इस प्रकार अपना भारतीय पुट सर्वांश में खाँ बैठी ।

साहित्य

प्रथम व्याख्यान में दक्खिनी में साहित्य-निर्माण का उल्लेख (पृ० ३५) करते समय यह बताया गया है कि दक्खिनी के पहले ग्रन्थकार रुवाजा बन्दानवाज़ गोसूदराज़ सैयद मुहम्मद हुसेनी (१११८-१४२२ ई०) माने जाते हैं । इनका बचपन दक्खिन में बीता था इस लिए स्वाभाविक ही था कि दक्खिनी भाषा का यथेष्ट प्रभाव इन पर पड़ा हो । इनके बुढ़ापे के अन्तिम बीस पच्चीस साल भी दक्खिन में ही बीते । अच्छे फ़कीर थे । मुस्लिम धर्म का प्रचार इनका उद्देश्य था । इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन्होंने कई छोटी-छोटी पुस्तकें लिखीं, जिनमें से एक प्रकाशित हो चुकी है । यह गद्य में है । सैयद मुहम्मद हुसेनी के नाम से कुछ पद्य भी है पर यह संदिग्ध है कि उनका लिखा है । दक्खिनी का पहला कवि निज़ामी था जो बहमनी सुल्तान अहमद

शाह तृतीय के शासन-काल (१४६०-६२ ई०) में मौजूद था । इस प्रकार गद्य और पद्य दोनों की धाराएँ १४वीं, १५वीं शताब्दी ई० में प्रारम्भ हुईं और दोनों जारी रहीं ।

गद्य के ग्रन्थों में दो तरह का साहित्य है, एक इस्लाम धर्म

प्रचार-सम्बन्धी और दूसरा तसव्वुफ का ।

गद्य धर्मप्रचार-सम्बन्धी ग्रन्थ प्रायः फ़ारसी के ग्रन्थों के अनुवाद हैं । ये धर्म की दृष्टि से

महत्त्व के हैं, भाषा के विकास के अध्ययन के लिए भी उपयोगी हैं पर साहित्यिक गुणों की दृष्टि से बहुत काम के नहीं हैं ।

मौलाना अब्दुल्ला ने १६२२ ई० में एहकामुलसल्वाह लिखा । यह फ़ारसी के ग्रन्थ का अनुवाद है । इसमें नमाज़ कैसे और कब पढ़नी चाहिए और एकाग्र होकर पढ़नी चाहिए इत्यादि बातों का उपदेश है । इसी तरह के अन्य ग्रन्थों के भी अनुवाद दक्खिनी में किए गए ।

तसव्वुफ़ के ग्रन्थों की संख्या काफी बड़ी है । अधिकांश में कथा-कहानियों के माध्यम से दर्शन और आचार-शास्त्र के तत्त्व समझाए गए हैं । प्रमुख ग्रन्थ मुल्ला वजही का सबरस है । यह ई० सन् १६३५ में रचा गया । यह ग्रन्थ मौलवी डा० अब्दुल हक़ ने १८३२ ई० में सम्पादित कर अंजुमन तरक्की उर्दू, हैदराबाद से प्रकाशित कराया । इनकी भूमिका से स्पष्ट है कि वजही इसके मौलिक ग्रन्थकार नहीं हैं । मूल ग्रन्थ फ़ारसी में है । फ़ातही ने दस्तूर उश्शाक़ नाम की एक मसनवी फ़ारसी में लिखी थी । इसमें पाँच हजार पद्य थे । उसके बाद दो ग्रन्थ और उसी विषय को लेकर लिखे गए—शबिस्ताने ख़याल और हुस्नो दिल । हुस्नो दिल गद्य में था । यह बहुत लोकप्रिय हुआ । इसीको आधार

मानकर वजही ने सबरस हिन्दी में लिखा। कहानी का संक्षेप भूमिका के ३० १४-३४ पर सम्पादक ने दे दिया है। अक़ल परिचम का बादशाह था और इस्क पूर्व दिशा का। हुस्न इस्क की बेटी है और दिल अक़ल का लड़का। बेटा जब सयाना हुआ तो अक़ल ने उसे शहर तन (शरीर) का बली बना दिया। दिल आबेहयात (जीवन-रस) की तलाश में निकल पड़ता है। फिरते फिरते वह हुस्न के देश पहुँचा। बहुत लड़ाई भगड़े हुए, अन्त में दिल और हुस्न का विवाह हो गया और दोनों ने सुख से जीवन व्यतीत किया। अक़ल और इस्क की लड़ाई सनातन है। कहानी में बहुत से अन्य पात्र आते हैं—नज़र, ख़याल, रकीब, हिम्मत आदि आदि। कहानी बड़ी (३०० पन्ने की) है, रोचक भी बहुत है।

साहित्यिक दृष्टि से वजही की कृति आदरणीय है। दो उदाहरण उसके ग्रन्थ से आगे दिए जायेंगे उस से स्पष्ट हो जायगा कि इंशा अल्ला आदि परवर्ती गद्य-लेखकों की शैली पर उसके ग्रन्थ का प्रभाव पड़ा होगा। वजही ने स्वयं कृताही के ग्रन्थ से सामग्री ली है और खेद है कि कहीं मूल ग्रन्थ या ग्रंथकार का उल्लेख नहीं किया, न अपनी कृतज्ञता प्रकट की। बीच-बीच में उसने अपने पद्य डाल दिए हैं, जहाँ तहाँ उपदेश भी भर दिए हैं जो मूल ग्रन्थों में नहीं हैं। अपनी तारीफ़ वह स्वयं इन शब्दों में करता है—

“आज लगन कोई इस जहान में हिन्दोस्तान में हिन्दी ज़बान सों इस लताफ़त इस छन्दा सों नज़्म होर नक्ष मिला कर गुला कर नहीं बोल्या।”

तसव्वुफ़ के अन्य ग्रंथों में मीरांजी हुस्न खुदानुमा के शरह

तमहीद हमदानी, बुर्हानुद्दीन औलिया के शुमायलुल्-इक्रिया, शाह बुर्हानुद्दीन जानिम के हशत मसायल, अमीनुद्दीन आला के गंज मखफ़ी, शाह बलीउल्ला क़ादिरि के मारफ़तुस्तलूक का तथा तूतीनामा (संक्षेप), इख़लाक़े हिन्दी आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से दो एक ही मौलिक हैं, शेष सब फ़ारसी अरबी के ग्रन्थों के अनुवाद या संचित हिन्दी (दक्खिनी) रूपान्तर।

गद्य के ग्रन्थों में दक्खिनी के वे रिसाले भी हैं जो गणित, रसायनशास्त्र आदि पर उन्नीसवीं ई० शती के पूर्वार्ध में हैदराबाद में लिखाए गए। यह वैज्ञानिक साहित्य उस समय बड़े काम का था। इधर बीसवीं शती के पूर्वार्ध में निज़ाम साहब की संरक्षा में यूरोपीय विद्वानों के भिन्न-भिन्न विषयों के ग्रन्थों का अनुवाद उर्दू में कराया गया और इन्हीं के कारण उस्मानिया युनिवर्सिटी में उर्दू के माध्यम से उच्चतम शिक्षा का प्रबन्ध हो सका। खेद की बात केवल यह है कि पारिभाषिक शब्दावली अरबी के मूल पर खड़ी की गई जो भारतवर्ष में कभी चल न सकेगी।

जैसा ऊपर बताया जा चुका है निज़ामी की मसनवी कदम राव व पदम दक्खिनी हिन्दी की प्रथम पद्य कविता है। दकिन में उर्दू के लेखक श्री नसी-रुद्दीन हाशिमि इस मसनवी के बारे में लिखते हैं—

“हस्व रवाज क़दीम इसमें अरबी और फ़ारसी के बनाय हिन्दी अल्फ़ाज़ ज़्यादा हैं।

इसकी ज़बान इस क़दर मुश्किल है कि इसका समझना दिक्कत-तलब है।”

यह किताब अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। डा० अब्दुल हक इसका सम्पादन कर रहे हैं, ऐसा सुना है। भाषा के जो नमूने देखने को मिले हैं उनसे यह हिन्दी के आदि चरित-काव्यों में गिनी जानी चाहिए। जायसी की पद्मावत की सी भाषा है। अच्छा हो कि एकेडमी या सम्मेलन इसका एक सुसम्पादित संस्करण देवनागरी में प्रकाशित करे।

दक्खिनी में अन्य बहुत सी मसनवियां लिखी गईं। इनमें से कुछ फारसी के ग्रंथों के अनुवादित रूप हैं। उदाहरणार्थ रावासी की मसनवी सैफुल्लूक व बदीउज्जमाल फारसी क्रिस्ता का पद्य-बन्ध अनुवाद है जो १६२५ ई० में लिखा गया और उन्हीं की दूसरी कृति तूतीनामा (१६३६ ई०) जियाउद्दीन बस्ती के फारसी ग्रंथ तूतीनामा का अनुवाद है। दूसरी ओर वजही की कुतुब मुश्तरी (१६०६ ई०) मौलिक रचना है। इब्न निशाती की मसनवी फूलबन (१६५५ ई०) फारसी क्रिस्ता बिसातीन का अनुवाद है।

पद्मावती और रत्नसेन की कहानी पर भी दक्खिनी में पद्मावत नाम की मसनवी बनी। इस पद्मावत का लेखक गुलाम अली है। हाशमी ने इसका उल्लेख किया है और रचना-काल १६८० ई० बताया है। जो नमूने उन्होंने दिए हैं उनसे भाषा दक्खिनी और हिन्दी शब्दों से भरी जान पड़ती है। डा० कादिरि (ज़ोर) ने जिस पद्मावत का उल्लेख तजकरह उर्दू मख्तूतात में किया है वह बाद की कोई दूसरी रचना है।

मसनवियों में अधिकतर प्रेम के क्रिस्ते कहानियाँ हैं। मुक़ीमी की मसनवी चन्दर बदन व माहियार में एक मुसलमान युवा माहियार (मुहीउद्दीन) और हिन्दू युवती चन्दरबदन का क्रिस्ता

दिया है। रचनाकाल १६४० ई० है। नायक जब नायिका के पास जाता है उस समय का वर्णन सुनिए—

नज़िक जाको बोल्या कि सुन ऐ परी ।
 मुंजे तुज लताफ़त दिवाना करी ॥
 दिवाना हूँ तेरा दिवाने के तईं ।
 अपस ते न को दूर जाने के तईं ॥
 घरथा आस तेरी निराली न कर ।
 जफ़्तापुर मुजे तूँ कदासी न कर ॥
 सो तुज बिन मुजे कोई होना नहीं ।
 कि बिन जल मछी का सो बीना नहीं ॥
 केता हूँ तुजे मैं कि ऐ गुन भरी ।
 तूँ करना एता कुछ मेरी दिलबरी ॥
 सो यो कह अदब सो तोड़ा कर उने ।
 घरथा सीस उसके कदम पर उने ॥
 गिला उस सुना कर उठी बोल यूँ ।
 समज कुछ अपसको ऐ बेडौल तूँ ॥
 हिंदू मैं कहाँ होर तुरक तूँ कहाँ ।
 कहाँ राम सीता मूरक तूँ कहाँ ॥
 कहाँ मैं चँदरमाँ कहाँ तूँ देवा ।
 केता क्या मुए तूँ दिवाना हुवा ॥
 भिड़क बोल उसको वही फिर चली ।
 उठी दिल में आशिक के वई तिलमिली ॥

प्रेमी को प्रेम की खातिर क्या-क्या सहना पड़ता है, क्या-क्या मुसीबतें भेलनी पड़ती हैं और प्रेमिका को भी अपने प्रिय-तम के लिए क्या-क्या दुःख उठाने पड़ते हैं इन सब का विवरण-

इन मसनवियों में भरा पड़ा है। जादू, माया, संग्राम आदि के वर्णनों के साथ-साथ चरित्र-चित्रण भी इन ग्रन्थों में अच्छा मिलता है।

ऊपर उल्लिखित मसनवियों के अलावा अहमद जुनेदी की माह पैकर (१६५३ ई०), सेवक का जंगनामा (१६८१ ई०), अमीन की बहराम व हसन बानो, रुस्तमी का खाविरनामा (१६-४६ ई०), नसरती का गुल्शन इश्क (जिसमें कुँवर मनोहर और मदमालती की कथा है), कुरेशी की भोगवल, काफ़ी महमूद बहरी की मनलगन (१६८८ ई०), बली वेलूरी की तीन मसनवियाँ (जिनमें से एक में पद्मावती की कथा है), इशरती की तीन मसनवियाँ—दीपक पतंग, चितलगन और नेहदर्पन आदि का नामोल्लेख तो करना चाहिए। समयभाव से कोई विवरण नहीं दिया जा सकता। सुल्तान इब्राहीम की रचना नवरस (१५६६ ई०) का भी उल्लेख करना आवश्यक है। इसकी भाषा में हिन्दी शब्द अधिक हैं और फ़ारसी अरबी कम।

गोलकुण्डा राज्य के कुतुबशाही सुल्तान न केवल साहित्य के संरक्षक थे, खुद भी अच्छे साहित्यकार हो गए हैं। मुहम्मद कुली (१५८०-१६११ ई०), मुहम्मद कुतुबशाह (१६११-२५ ई०), अब्दुल्ला कुतुबशाह (१६२५-७२ ई०) और अबुलहसन (१६७२-८६ ई०) चारों सुल्तान अच्छे कवि थे। मुहम्मद कुली कुतुबशाह की रचनाएँ कुल्लियात के रूप से प्रकाशित हो चुकी हैं। इनको देखकर इस नरेश की साहित्यिक प्रतिभा की प्रशंसा किए बिना नहीं रहा जा सकता। इसने नायिका-वर्णन, ऋतु-वर्णन, मसनवी, राजल, रुबाई, मसिया सभी लिखे हैं। इसकी रचना के थोड़े से नमूने अन्त में दिए जायेंगे।

इन व्याख्यानों में हमने हिन्दी के उस रूप का विवरण देने की कोशिश की है जो आदिकालीन कहा जा सकता है। फ़ारसी लिपि में ही होने के कारण यह हिन्दीवालों को दुर्बोध है। जरूरत है कि इसका कुछ अंश शीघ्र ही देवनागरी लिपि में प्रकाशित होकर विद्वानों के सामने आवे।

मेरे कथन से इतना स्पष्ट हो गया होगा कि यद्यपि हिन्दी की दक्खिनी शाखा के कलाकार प्रायः सभी मुसल्मान थे तथापि अर्से तक भाषा में बहुत हद तक उन्होंने भारतीयता निभाई और भावों में भी कुछ हद तक देसीपन क़ायम रक्खा। खेद है कि यह भावना उत्तरोत्तर मिटती गई और भाषा भी हिन्दू मुसल्मानों के बीच भेदक बन बैठी ! ईश्वर कल्याण करे।

ओ३म् शम्

परिशेष
साहित्य के नमूने

सुल्तान कुली कुतुबशाह

हम्द

चन्द्र सर तेरे नूर थे, जिस दिन को नूरानी किया ।
तेरी सिफ़त किन कर सके, तूँ आपी मेरा है जिया ॥
तुज नाम मुँज आराम है, मुँज जीव सो तुज नाम है ।
सब जग को तुझ सों काम है, तुज नाम जप माला हुवा ॥
तुज याद में जग मोहिया, है जग उपर तेरा मया ।
जो जग मँगे सो तूँ दिया, तूँ ही जगत का है दया ॥
जीता हूँ तेरी आस थे, आया है रहम आकास थे ।
जे कुच मँगूँ तुज पास थे, सो है सो मुँज को तूँ दिया ॥
बहु तिक मया सेती अपुन, दीना कुतुब को सब दखिन ।
सीसों नबी का नित चरन, जब लग है तन म्याने जिया ॥

कुल्लियात, भाग १, पृ० ३:

बक़रीद

ख़बर बक़रीद खुशियाँ सेती मेरे ताई ल्याया है ।
खुशियाँ ऊपर थे कुरबानी होने बक़रीद आया है ॥
ए मजलिस ईद देखत ऐश हीर खुशियाँ सेती दायम ।
अनन्दों राग को आलाप कर बहु गुन सुनाया है ॥

गुलाली फूल मुँज मजलिस ये रँग पाकर सुहाते हैं ।

कि साकी अप नयन प्याले सों मद दे मुँज रिक्काया है ॥
सहेल्याँ अप सवारयाँ हैं परम कसबत के रंगा सों ।

कि बकरीद आके सब जग में तबल इशरत बनाया है ॥
सक्याँ मुज मस्ती क्याँ मात्वाँ इश्क का खेल मुज सुहता ।

जगत ए इश्क को देखत अचंभा हो लुभाया है ॥
मुँजे चौधर अनन्दाँ हौर लुशियाँ का गरजना सुहे ।

तो मस्ती ईद का सर पग पै रख मोमन मनाया है ॥
नबी सिदके कुतुब शह को सुहे जम ईद मस्ताना ।

कि मेरे सिस उपर दायम चतर साही सुहाया है ॥

कुल्लियात, भाग १, पृ० ११५

बसन्त

बसन्त आया सकी जूँ लाल गाला ।

कुसुम चोला॥

पपीहा गावता है मीठे बैना ।

मधुर रस दे अधर फुलका पियाला ॥

पियारी हौर पिया हत में सु हत ले ।

सरोबन में न्हिडे गुल फूल माला ॥

कँठी कोयल सरस नावाँ सुनावे ।

तनन तन तन तनन तन तन तला ला ॥

गरज बादल ये दादुर गीत गावे ।

कोयल कूके सुफुल बन के खयाला ॥

सदा सेवा करें ऐसी गुसाहँ ।

दलिदर दूर कर करता निहाला ॥

नबी सिदके हुवा कृतुब तेरा ज़ीनत ।

दुदथाँ सीने में सलता दुःख भाला ॥

कुल्लियात, भाग १, पृ० १३६

ठंड काला

हवा आई है लो के भी ठंड काला ।

पिया बिन सँताता मदन बाले बाला ॥

रहन ना सके मन पिया बाज देखे ।

हुवे तन कों सुख जब मिले पीव बाला ॥

ए सीतल हवा मुँज गमे ना पिया बिन ।

मगर पीव कंठ ला करै मुँज निहाला ॥

सजन मुख शमे बाज उजाला न भावे ।

भुलाया है मुँज जीव कों ओ उजाला ॥

जो रात आवे चँदनी की मुँज कों सतावे ।

कि चंदना मुँजे नै नयन सोज़ लाला ॥

मेरे मन को भाता है लालन सो मिलना ।

मुके भाते है पीव हत कंठमाला ॥

नबी सिदके कृतुवा अनन्दाँ सों मिलकर ।

अपस साईँ सों पीवै जम मद पियाला ॥

कुल्लियात, भाग १, पृ० २०८

प्यारी

सक्याँ जा मना ल्याओ प्यारी कों आज ।

कि सब छंद भरियाँ का अहे सीस ताज ॥

कहो यो कि मंदिर कों बहुजेव सों ।

सँवारे बले ना गमे तुज बाज ॥

मदन आ सँताता है गर ग्यान कों ।

करो दाद अपीँ आ तुम्हारा है राज ॥

अजायब है किस्वत तुमन हुस्न की ।
 कि उस्ये सुहाता है उशकियी का साज ॥
 तू खूबों का है रूप मैं पादशाह ।
 तो ल्याये है सब तेरे तैं नेह खिराज ॥
 तुमन मुख का नूर जब देखूँ मैं ।
 ओ एक भन मुँजे सौ बरस का है काज ॥
 नबी सिदके कुतुब ये मजलिस सदा ।
 सुहाता है जो हुस्न सों मुल्क लाज ॥

कुल्लियात, भाग १, पृ० २३६

छत्रीली

छत्रीली सों लग्या है मन हमारा ।
 कि उस बिन नहीं हमन एक तिल करारा ॥
 सबूरी को नहीं है ठार दिल में ।
 सबूरी क्यूँ करे सो करनहारा ॥
 अलक फाँसी सों पंखी जिव पकड़ने ।
 दिखाई गाल ऊपर तिल का चारा ॥
 बसे मन में सो इसके खयाल निस दिन ।
 नहीं इस खयाल बिन मुँज मन में टारा ॥
 नयन बहरी छोड़ी सूके डोरी सों ।
 करे चंचल पँखी दिल को शिकारा ॥
 मया करना करे माशूक अपे हो ।
 कहो ना क्या करे आशिक बिचारा ॥
 नबी सिदके कुतुब आशिक है तेरा ।
 सदा मिल अछ न हो ऐँक तिल भी न्यारा ॥

कुल्लियात, भाग १, पृ० २४७

सुन्दर

चंद्रमुख तुज, लाल लब हैं, दसन जूँ तेरे तारे हैं ।

कही यह चाँद काँ का है किस असमाँ ये उतारे हैं ॥

अगर यह चाँद इस असमाँ का कहै जग तो कबूल क्योँ ।

समाँ के चाँद के मुख में कौन देख्या जो तारे हैं ॥

सुरज चँद सों सुँधर मुखको दिए तशबीह सब शायर ।

बले पूँछें जो मुझको तो उस अंगे ओ बिचारे हैं ॥

कही देखे करशमा कर वो सुन्दर नाज़नी मुँज को ।

तो उस नैनों के भलकारे भलकते जो कटारे हैं ॥

समा आ बाज़ के ऊपर हदक़ सो सूर करना वो ।

भवाँ के कौस सों तारे के नैना तीर मारे हैं ॥

सुरज हीर चाँद के करनोँ भलकते सो दिसेँ मुज योँ ।

कि व्यूँ मँगते सुँधर कन ओ गदा हो हत पसारे हैं ॥

ऐसी सुन्दर को पाया हूँ ख़ुदा के रहम ये क़तुबा ।

जो हूराँ हीर मलक देख कर हुए हैरान सारे हैं ॥

कुल्लियात, भाग १, पृ० २७४-५

नक़्शए विसाल

ऐ नार मेरे नैन को दे आपना दीदार ऐश ।

सरवन भी तपते हैं मेरे इनको भी दे गुप्तार ऐश ॥

मुँज नाक धन तुज नाक ये दम बास का धरता हवस ।

दम बास देकर तूँ उसे दायम दिए आपार ऐश ॥

तुज दुर अघर तिसमें नचात अझीत भर ।

मेरे अघर पर धर अघर मँगता हूँ मैं आसार ऐश ॥

तुज रुख़ सेती मुँज रुख़ अहे नहीं इस ये रुख़ फ़र्ख़ कही ।

रुख़ सों मिला रुख़ को कि है रुख़सार को रुख़सार ऐश ॥

मुँज कंठ घन तुज कंठ की कँठ को बहुत मँगता अहे ।

मुँज कंठ सों हम कंठ होवे सूर का भलकार ऐश ॥
बाहाँ मेरयाँ मुशताक हैं तुज बाँह के गलहार के ।

बाहाँ मने बा ना सके तुज बाँह का गलहार ऐश ॥
मुँज हात मँगता है अदिक तुज हात सों मिलने के तहँ ।

मुँज हात को अप हात सों करने दे तूँ ऐ यार ऐश ॥
भेंटन के दूबट सेती घन कुच कुच अपना तौल कर ।

हम दोनो कुच सों कुच लगा कुच कुच करें हरबार ऐश ॥
छाती सों छाती एक कर एक जीव हौर एक मीत सों ।

तुज नख सेती नख मुँज करने में है ठारे ठार ऐश ॥
मेरे तेरे रोमावली जमना व गह्वा जूँ मिल अहँ ।

रों रों सो मछली होय कर करते हैं तुज गंगधार ऐश ॥
दो नाभी दो भरि अहँ संग्राम के दरिया मने ।

दो मन तेरा दो तीर तिर करते अहँ इस ठार ऐश ॥
तुज मुँज कँमर के कट मने पैरत चकट संपङ्कथा विकट ।

इस कट मने करता अहँ दायम मदन का भार ऐश ॥
तेरे मेरे पावाँ सकी जूँ नाग नागिन मिल रहे ।

सिदके नबी करता कुतुब कर्तार थे आपार ऐश ॥
कुल्लियात, भाग १, पृ० ३०३-५

सौगन्ध

शराव दौर दृक्क बाज़ी बाज मुँज थे ना रक्षा जासे ।

कि यो दो काम करना कर मैं ले सौगंध खाया हूँ ॥

कुल्लियात, भाग १, पृ० ३०६

प्रेम की कहानी

मुहब्बत की लज्जत फ़रिश्तियाँ को नै है ।

बहुत सई सों मैं सो लज्जत पछानी ॥

उसी का है दो जग में जीवना अनन्द सों ।

बिने नेह ब्रूकथा है सुन ऐ अयानी ॥

कुल्लियात, भाग १, पृ० ३११

दुनियाय फ़ानी

देवो जग को भोजन ओ बख़िश करो जम ।

कि भ्रमकेगा उस नूर ये तुम पिरानी ॥

कुल्लियात, भाग १, पृ० ३१८

गज़ल

पिया बाज प्याला पिया जाय ना ।

पिया बाज एक तिल जिया जाय ना ॥

कहे ये पिया बिन सबूरी करूँ ।

क़ह्या जाय अम्मा क़िया जाय ना ॥

नहीं इश्क़ जिस वह बढ़ा कूड़ है ।

कधी उससे मिल बैसिया जाय ना ॥

कुतुब शह न दे मुज दिवाने को पंद ।

दिवाने को कुच पंद दिया जाय ना ॥

कुल्लियात, भाग २, पृ० २३

गज़ल

सुनो मेरी साती पिया हीरों राता ।

कि पर सेज पर साहँ परसंग गमाता ॥

हुवा बे सबब साहँ हमना सों करवट ।

पकड़ दूती का मन हमन मन सँताता ॥

पिया मुज सों यों मिल कि भल खाय दूतिन ।

मैं हूँ तेरी माती तू है मेरा माता ॥

हिकायत परम का नको मुँज ये पूछो ।

पिया हात देहों मैं सब मन का भाता ॥

मैं भूली हूँ तेरे छँदाँ सों पियारे ।

कि खातिर दिखा कर भी फिर फिर मनाता ॥

नहीं अग्ने खातिर मुँजे बस्ल म्याने ।

कि हर दम मुँजे बिरह साहँ डराता ॥

नबी सिदके कुतुबा की माती कती है ।

कुतुबशाह सुन्दर गुनी मह माता ॥

कुल्लियात, भाग २, पृ० २६.

गज़ल

तेरे नेह का मुँज को बिच्छू लड़था ।

मेरे सब ही तन में बिस उसका चढ़था ॥

मैं आहँ हूँ तुज पास उतारा करन ।

तुमी करने हारा उतारा पियारा ॥

जो देखी मैं उस रूपवंता सजन ।

नयन उस सलोनी ये फिर बिस चढ़था ॥

कुल्लियात, भाग २, पृ० २७.

गज़ल

पियारे गर च मैं तुज बिन नहीं तिल रहने सकती हूँ ।

बसो लोगों के डर ये भी अपस तहँ कूँड (कैद) रखती हूँ ॥

छिपी चोरी कधी मुह (लेकिन) मैं यकट पाती जो हूँ कहँ तुज ।

तो देख तुज मस्त हो ब्यँ मुहर (मोर) अपस मैं अप तुमकती हूँ ॥

लगी थी मैं अनाचीती गले तुज फूल सों एक दिन ।

तबाँ ये सर के पावाँ लग अझूँ खुशबू महकती हूँ ॥

मेरा बस होय तो आलटपट हो. तुज तहँ जीन देने में ।

कि फुरसत नै करूँ कथा फ़िक्र इस गुस्ता से पकती हूँ ॥

तुसों मैं बात करती तो थी बूतिन पेट सों उसये ।

न पतिया छावँ को अपने खड़ी जागा बिचकती हूँ ॥

दूतिन के भूट कों सच मानता तू बूँ तो वागिष मैं ।
 वो क्यो कए भूट आ तुज कों बरी जा उस हटकती हूँ ॥
 कृतुव शह मस्त हूँ इस बक्त् पर तू बलश हो मुँज कों ।
 न जानूँ क्या कती हूँ मैं न जानूँ क्या फड़कती हूँ ॥

कुल्लियात, भाग २, पृ० १८२-३

शज़ल

कि साहँ पास मेरे है कि देखी आज सपने में ।
 ठठी जन्न हड़बड़ा कर मैं न देखी सेज अपने में ॥
 पिया की छाती लगकर मैं रही थी छिपके छाती में ।
 तहाँ थे युह दुतन काड़े जो मत देखे थे छुपने में ।
 न बूझूँ तुज पिरित ग्याने मेरा चीनत क्यो बरावेगा ।
 न मुँज में सबर ना तुज महर जावेँ कुरन जपने में ॥
 तुमारी सों तुमन कों मैं कबी भी याद आई थी ।
 तुमन जपने थे निस दिन मैं पुनमचंद जूँ है खपने में ॥
 नबी के सिदके रे कुतुबा मरथा है इश्क का बाज़ार ।
 जु कुच मँगता है सौदा गर नफ़ा कुच नैं है तपने में ॥

कुल्लियात, भाग २, पृ० १९६

शज़ल

न बिछड़ूँ साईं ये एक तिल सहेली ।
 पिया के रंग सों मैं हूँ अकेली ॥
 सदा पिउ जोत सों मैं जगमगाती ।
 पिया नेह की छवि सों हुई हूँ छबीली ॥
 सक्याँ प्यारियाँ मने मैं पिउ की प्यारी ।
 हुई पिउ नेह सों फुल अँ नबेली ॥

सबन कद सरो सों मुँज दिल बँधाना ।

पलोढी रुक को जूँ कौली बेली ॥

पिया मुतलक मुँजे दिल ये बिसारे ।

पिया बिन क्योँ जिवूँ कह री सहेली ॥

सीने ये मुँज पियारी नैं उतारी ।

किये रँग रस सेती मुँज नित नवेली ॥

नबी सिदके फुतुवशह महर सेते ।

न छोड़े सेज पर मुँज कद (कभी) बकेली ॥

कुल्लियात, भाग २, पृ० २१५

चमन फूल सब बास खुशबू का पाए ।

सुषड़ सुन्दरी जब अपस केस खोले ।

कुल्लियात, भाग २, पृ० २३४

पिया मूरत रखी हूँ यों नयन में ।

कि अप पुत्लियाँ को रशको नैं दिखाई ॥

कुल्लियात, भाग २, पृ० २५६

तेरे दरसन की मैं हूँ साहं माती ।

मुजे लावो पिया छाती सों छाती ॥

पियारे हात घर संभालो मँजको ।

कि तिलतिल दूती तुज माती डराती ॥

परेम प्याला पिलावो मुँज को दम दम ।

कि तूँ है दो जगत में मुँज संगती ॥

न राखूँ तुज नयन में राखूँ दिल में ।

कि तूँ मेरा पियारा जिव का साती ॥

पिया के ध्यान सों मैं मस्त हूँ मस्त ।

मुँजे बिरहे के बैना की (क्योँ) सुनाती ॥

अगर बक तिल पड़े अंतर पिथा सों ।

नयन जल सों सपत समदर भराती ॥

नबी सिदके कहे कुतुबा की प्यारी ।

रिक्का दम दम अघर प्याला पिलाती ॥

कुल्लियात, भाग २, पृ० २५८

सहेली मदनलाल मो.चित्त भावे ।

कि तिलतिल दिल उस छंद पर बारी जावे ॥

किसे चित बुलावे किसे रैं जगावे ।

किसे दिल तपावे किसे मन रिक्कावे ॥

किसे नेह लगावे किसे मद पिलावे ।

किसे रूप दिखावे किसे पेम पिलावे ॥

किसे लव चखावे किसे छिप रिक्कावे ।

किसे सेज मनावे किसे गज़क दिलावे ॥

किसे अन्न दिखावे किसे तख्त सिरावे ।

किसे पिक बतावे किसे छवि दिखावे ॥

किसे प्रेम लगावे किसे चित्त भुलावे ।

किसे बह (भय) किलावे किसे पाँ दिलावे ॥

नबी दास कर आन के तैं पुवावे ।

कुतुबशह सदा बीर मालों गवावे ॥

कुल्लियात, भाग २, पृ० २८४-५

रेरुती

सुनो एक दो बात साहब हमारी ।

सहेलियाँ चतुर मैं हूँ नंदी तुमारी ॥

कहो रात किन सात कैते मन में बातों ।

कि चूता है तुम नैन ये रंग खुमारी ॥

नयन चित्त सों देखी हूँ मैं पँथ तुमारा ।

तुमन त्रिन मुँजे क्यों गमे रात सारी ॥

कहो साहब येनों है किसकी निशानी ।

खने खन तुमन पर थे जाऊँगी बारी ॥

उनन सात तिल मिलके मुँज को विसारे ।

तुमन कौल बेरे कने थी मैं प्यारी ॥

तुमी साहब हैं कस मनाओ भुलाओ ।

मो अंदाज़ा क्या तुम कहूँ मैं विचारी ॥

नबी सिद्के बेचारी को यो न मारो ।

अलह की नज़र ये कुतुब की सवाँरी ॥

कुल्लियात, भाग २, पृ० ६०

अली आदिलशाह (शाही)

कोई जाओ कहो मुज साजन सात

मुज नेंह बन्दी तूँ कैता घात ।

दिल मेरा अपने सात किया । मुज बिरहे में दिन रात किया ॥

दिलदारी का ना बात किया । सब विसरा सुख है हात किया ॥

कए मुज सों ऐसी घात किया । कोई जाओ०

पिउ मूरत देखो सीने में । जब जागो तब रहूँ सपने में ॥

ला दीपक बिरहा अपने में । तन जाए झुकझुक जीने में ॥

आराम अच्छे मुज खपने में । कोई जाओ०

तुज याद करतल मलती हूँ । लहू तेल मने दिल तलती हूँ ॥

तन मोमबत्ती हो जलती हूँ । इस जलने सों ना टलती हूँ ॥

सब आयँ बिरह में गुलती हूँ । कोई जाओ०

कोई जाओ सँवरे मेरा हाल । पिउ कैसा मुज सों जो कोताल ॥

मैं जगते नित उठ अंजू दाल । कलपती आँसू मोती माल ॥

मुज यक यक पल है लकलक साल । कोई जाओ०

सब दिअस गया है धन ते लड़ते लड़ते । खुट रात गई है पावों पड़ते पड़ते ॥

दक्किन में उर्दू, पृ० ११६-१०

बुर्हानुद्दीन जानिम

नहीं मुझ से पीत लगाए मन लेता रे ।
 अल्ला मुझे आशिक अपना तूँ कैता रे ॥
 अब छोड़ नैन कहुँ मत जावे रे ।
 मुझ बिरह जली को मत तरसावे रे ।
 यो जाने तूँ मेरे मन भावे रे ।
 यो तो शाम सलौना तूँ मेरा रे ।
 न चले तुझ पर मन्तर टोना रे ।
 जो कोई चाटिए सो फ़ानी होना रे ।
 यो तो बिरह अगिन सब दिल लाई रे ।
 तन फ़ानूस कर हौँ दिखलाई रे ।
 लहू तेल दिया दीपक जलाई रे ।
 आखे जानिम जीब जाने फ़ानी रे ।
 जान की आज है मेहमानी रे ॥

दक्किन में उर्दू, पृ० १२५

बली

बिरागी जो कहाते हैं उसे घर बार करना क्या ।
 हुई जोगिन जो कोई पी की उसे संसार करना क्या ॥
 जो पीवे पित्त का पानी उसे क्या काम पानी सों ।
 जो भोजन दुख का करते हैं उसे आहार करना क्या ॥
 सखी तुमना को अर्जानी यह किसवत और ज़रीना सब ।
 टिठे जी सों जो बेजार उसे सिंघार करना क्या ॥

खजालत की गरद अँछवाँ के पानी सो गिलावे में ।
 बनाने गम का घर मुजको दुजा मेमार करना क्या ॥
 नहीं कोई धर्मधारी जो कहे पीतम को समझा कर ।
 कि दुखिया को विछोही सो इता बेजार करना क्या ॥
 महल दिल का तेरी खातिर बनाया हूँ मैं दिल जों सो ।
 जुदाई सो उसे यकवारगी मिस्मार करना क्या ॥
 सहेल्योँ जब तलक मुजको न बोलेंगी बली आकर ।
 मुझे तब लग किसो सो बात और गुप्तार करना क्या ॥

कुल्लियात, पृ० ३५

तेरे बिन मुजको ऐ साजन तो यो घर बार करना क्या ।
 अगर तू ना चहे मुजको तो यो संसार करना क्या ॥
 मेंदे घर वासो बाहर कर अपस के आय मुंसिफ़ हो ।
 निकारा त्योछ बकबक कर इता बेजार करना क्या ॥
 अगे जब सो न आने की थी मनसा मन में तुमना के ।
 तो मुझ से दुख भरे सो फिर झुटा इफ़रार करना क्या ॥
 पतियारा नहीं तेरे कहे का तो चुप हैरान करता है ।
 जो मन में निहीछः मिलने का तो फिर तकरार करना क्या ॥
 तेरे आने की बाट ऊपर विछाया हूँ अँवाँ अपनी ।
 तो बेगी आ कि तुझ बिन मुजको यह घर बार करना क्या ॥
 तुम्हीं मिलने सां गर अपने सुहागिन ना करोगे मुझ ।
 तो जूझा गजगरी का और करैलाधार करना क्या ॥
 जो कोई जाले पिरत की आग में तनमन को यो अपने ।
 बली संगम बना ऐसे को फिर आधार करना क्या ॥

कुल्लियात, पृ० ३६

चाल अपनी बिसर गई मंगल ।

बोल अखियाँ को अपनी मिस्ल कँवल ।

कँवल का दिल खिला सीनः के दर में ।

हँसली तुझ गल में देख कहते हैं ।

चाँद से मुक्ल का है यों हाला ॥

नैन मिर्गों की घाँस पकड़ी मुख ।

देख तेरी अखियाँ का दुंवाला ॥

मुझे अचरज यही आता पिया के पान खाने का ।

न जानूँ क्या सबन थाकूत असली के रँगाने का ॥

कुल्लियात, (फुटकर)।

अजमत

मुझे पीत का यों कोई फल न मिला ,

मेरे जी को यह आग लगा सी गई ।

मुझे ऐश यहाँ कोई पल न मिला ,

मेरे जी को यह आग जला सी गई ॥

मेरे ताया के पूत ये तुम सभी हम ,

रहे एक जगह पले एक ही साथ ।

मेरे बाप ने उम्र जो पाई थी कम ,

उन्हें छीन के ले गया मौत का हाथ ॥

मैं थी नन्ही सी जान गरीब बड़ी ,

कभी भूल के दुख न किसी को दिया ।

न तो रूठी कभी न कितो से लड़ी ,

मेरी बातों ने घर ही को मोह लिया ॥

ये तो बाले ही तुम पै था तुम को बड़ा ,

मेरा ध्यान किसी की मजाल न थी ।

मुझे टेढ़ी नज़र से भी देखे ज़रा ,
 मुझे खेल में भी तो किया न दुखी ॥
 मेरे सिर में तुम्हारा ही ध्यान बसा ,
 मेरी चाह के राजदुलारे बने ।
 तुम्हें देवता मान के मन में रखा ,
 मेरी फूज़ ली आँखों के तारे बने ॥
 मेरा चुन्नु अभी से है इस पै फ़िदा,
 यह मुखौली है मोहनी मेरी बहू ।
 यह चची का कहा मेरे दिल में लिखा ,
 वही दाढ़ गया मेरे मुँह पै लहू ॥
 इसी बात के घर में जो चर्चे हुए ,
 सभी कहते थे मुझ को तुम्हारी दुल्हन ।
 मुझे तुम ने भी अरने लगा के गले ,
 बड़े बार कहा “मेरी प्यारी दुल्हन” ॥
 हुए पद के निचन्त तो उहदा मिला ,
 हुआ ग्यान का गुन का जो शहर में नाम ।
 यह मज़े का नया ही शिगूफ़ा खिला ,
 लगे मेंह की तरह से बरसने पयाम ॥
 मेरे ताया बड़े थे ज़माना शनास ,
 बड़े ऊँचे घराने में ठहरा पयाम ।
 गया टूट सा जी गई टूट सी आस ,
 मेरी चाह का हो गया काम तमाम ॥
 बड़ी धूम से आई तुम्हारी दुल्हन ,
 मैं भी काम में ब्याह के ऐसी जुती ।
 कोई और थी गो मेरी प्यारी दुल्हन ,
 कहा सब में बड़ी है बहन को खुशी ॥

मेरा आखिरी वक्त है आन लगा,
 कोई और तुम्हारी है प्यारी दुल्हन।
 मुझे अब भी तुम्हारा ही ध्यान बसा,
 न बनी, पै रही हूँ तुम्हारी दुल्हन ॥
 मुझे जीते जी पीत का फल यह मिला,
 मेरे तन को यह आग लगा ही गई।
 मुझे प्यार की रीत का फल यह मिला,
 मेरे तन को यह आग जला ही गई ॥

दक्कन में उर्दू

वजही का गद्य

असील मेहर व मुहब्बत का भूका। असील शफ़क़त और मुरव्वत का भूका। जो बादशाह असीलां को मंगता उसे कुछ जफ़ा नै कि बोले हैं 'असल त कुछ ख़ता नहीं कमज़ात ते बफ़ा नहीं। काम पड़े बरौर किस का ज़ात दिस नहीं आता।' भला हौर बुरा असील हौर कमज़ात दिस नहीं आता। सबीच बड्यौं बाताँ करते, एक बात कां सौ हिकायतौं करते। जिस आदमी में बहुत अछेगा ग्यान उसीच में कुछ है भले बुरे की पहचान। आदमी बहुत बड़ा गौहर, उस गौहर को परकना हर किसी को काम नै, हर किसी में यो दूर बीनी यो नाज़ुक फ़ाम नै। यो खुदा का देना है, यो क्या जोरां सों लेना है। असील की बला दूर, असील ते साहब शर्म हज़ूर, असील लोग बादशाहों को बहुत हैं जरूर। 'असील पैको (पैसों) पर नज़र नहीं करता, असील अपनी शर्म को मरता, अपने नेम धर्म को मरता। जो कुछ होता खुदा का भाता। बुरा वक्त क्या पूछ कर आता।

वस हुस्न के हमजाद को हाज़िर कर हुस्न के हुज़ूर लाया । हुस्न देख हुड़े हीरान, यकायक यो किधर ते पैदा हुई यहाँ । परियाँ में ते आई परी । यो भी बहुत तवाज़ा करी, बहुत ताज़ीम करी । वो नाज़ हौर रामजे की घड़ियाँ । एक को एक देख दोनों हँस पड़ियाँ ।

—

एक रात बात में बात अक़ल हौर दिल के लश्कर का क्रिस्सा काड़ी, अपने राज का पर्दा फाड़ी । काँटे का ज़रूम घाव दर्द कही । अपने हमदर्द पास दर्द कही कि हमना हौर दिल में आशिक़ हौर माशुकी की निस्वत दमियान है, दो तन हैं बले दो तन को एक जान है—दोहरा

जे मैं कही सो उन कहा प्रीत है इस बात ।

दो मन का एक मन भया अब दो की एक ही बात ॥

दिल बाप के मुलाहिज़े सों जब भगड़े में आता है नहीं तो यो भगड़ा उसे कर्षाँ भाता है । वो आशिक़ साहेबे सूरत साहेबे मुहब्बत, उसे भगड़े सों क्या निस्वत । बात अजब है । उसके भगड़ने को एक सबब है । यहाँ कुछ हम नैं, इसका कुछ राम नैं । बले भगड़ा इताल अक़ल सों आ पड़या है, क्रिस्सा मुशिकल खड़या है । हुस्न धन मनमोहन जगजीवन की बात हुस्न की हमजाद सुन सब ख़ातिर लिया बिचारी कही खुदा है डर न को, अक़ल क्या अछे बिचारी ।

—

अनुक्रमणी

क

अगत्य १६, २६	इंशाअल्ला ८६
अलमत ३८	इखलाके हिन्दी ८७
अप्पर स्वामिगल, २०	इन्न निशाती १५, ३६, ८८
अबुलहसन ६०	इब्राहीम आदिलशाह सुल्तान ३६
अब्दुलक, डा० २८, २६, ३१, ३३, ३५, ६२, ६८, ८५, ८८	इब्राहीम सुल्तान ६०
अब्दुल्ला कुतुबशाह ६०	इशादिनामह १४
अब्दुल्ला द्वितीय अहमदशाह बहमनी ३६	इशरती ३६, ६०
अब्दुल्ला दुसेनी ३६	उदय २१
अमीन ८०	उर्दू की इन्तिदाई नशो व नुमा में सुफ्रियाय कगम का काम, २८
अमीनुद्दीन आला ८७	एकनाथ १८
अमीर खुमरो ३०, ३१, ३६	एकनाथी भागवत १६
अमृतानुभव १८	एहकामुल्सल्वाह ८५
अल्बेरूनी २६	औरंगजेब १७, ३४, ३६
अवन्तिसुन्दरीकथा २१	कदमराव व पदम ३६, ८७
अशरफ, शेख १४	कपिलर २०
अशोक २६	कबीर २६, ३२
अहमद जुनेदी ६०	कमालख़ौं १५
आचार्यसूत्र १८	कर्पूरमंजरी २३
आसफ़जाह १७	कविराजमार्ग २०
आसफ़जाह (सुवेदार) ३७	कवीश्वर २१
इंजील २६	काज़ी महमूद बहरी ६०
इंडियन पेंटिकवेरी, ५३	कुंडलकेशि २०
	कुतुब मुश्तरी १५, ४४, ६८, ८८
	कुतुबशाहमु हम्मद कुली ३६, ६६

कुरेशी ६०	शानेश्वर १८, १६, २२
कुल्लियात वली ६८	शानेश्वरी १८, १६
कृष्ण १७	भूलना ३१
खंडनखंडखाद्य २३	तजकरह उर्दू मखतूतात ८८
ख्वाजा ३३	तजकरे ३०
ख्वाजा अन्दानवाज गेसुदराज सैयद	तत्त्वार्थमहाशास्त्र २१
मुहम्मद हुसेनी, ८४	तिरुविलइयाडल पुराण १६
खाविरनामह १५, ६०	तुलसीदास २६, ५३
गंजमल्लकी ८७	तूतीनामा ८७, ८८
गवाली ३६, ६८, ८८	तेवारं १६, २०
गुणगविजयादित्य २१	तैमूर लंग ३५
गुलामअली ३६, ८८	दंडी २५
गुल्शनइश्क ६०	दक्कन में उर्दू ८७
गोरख २६	दत्तात्रेय १७
गोतमबुद्ध २६	दस्तूर उरशाक ८५
चंडपाल २३	दारुमि २०
चंदकवि ३२	दीयक पतंग ६०
चंदरबदन व महयार १४, ८८	दुर्विनीत २१
चंद्र २१	दौलताबाद ३३
चक्रधर १८	नक्कीरर २०
चितलगन ६०	नवरस ६०
चूडामखि (तुम्बुलूराचार्य कृत) २१	नसरती १७, ३६, ६०
जंगनामा ६०	नसीरुद्दीन हाशिमि ८७
जईफ़ी ३६	नागार्जुन २१
जयचन्द २३	नाजय भट्ट २१
जयबन्धु २१	नामदेव १६
जायसी ८८	नासिख ३७
जियाउद्दीन बरूशी ८८	निकातुशशोअरा ३६
जुनूनी १४	निज़ामी ३६, ८४, ८७
जीक ३७	निज़ामुद्दीन ३३

निष्ठातुल इश्क ३६	भारवि ३१
नृपतुंग (अमोघवर्ष) २०, २१	भावार्थदीपिका १८
नेहदपन ६०	भास्कराचार्य १८
नैषधीयचरित २३	भोगवल ६०
नौसरहार १४	मखतूतात १४
पंडित २१	मखिमेललह २०
पद्मावत ८८	मनलगन ६०
परमामृत १६	ममऊद ३०
परशुराम २६	महमूद गज़नवी २४
परिपाडल १०	महानुभाव पन्थ १७, १८
पुष्पदन्त ३२	महावीर स्वामी २६
पृथ्वीराज २३, ३२	महिमभट १८, २२
पृथ्वीराजरासो ३२	महीन्द्रभट १८
फ़ताही ८६	महेन्द्रपाल २३
फ़रिश्ता, ३४	भारफ़तुरसलूक ८७
फ़ातही, ८५	माह पैकर ६०
फ़िक्कण हिन्दी १५	मीर ३६, ८३
फूलवन १५, ८८	मीर अमन ६२
बल्लभाचार्य ३२	मीरांजी हुस्न खुदानुमा ८६
बहराम व हसन बानो ६०	मीराजुल आशिकोन २२, ३३
बहरी ३६	३५, ६८
बाण २५	मुकीमी ३६, ८८
बिसातीन ८८	मुकुंदराज १६
बुर्हानुद्दीन ३३	मुल्ला वजही १४ ८५, ८६
बुर्हानुद्दीन अलिया ८७	मुसदफ़ो ३६
बुर्हानुद्दीन जानिम, शाह ३६, १४, ८७	मुहम्मद ५१
बुलबुल १४	मुहम्मद औफ़ी ३०
बौद्ध गान ओ बोहा ३२	मुहम्मद कुतुबशाह ६०
भारत २१	मुहम्मद कुली ६०
भारतीय भाषा सर्वे (६बीजिल्द) ४३	मुहम्मद कुली कुतुबशाह १५८३, ६०,

मुहम्मद गोरी ३४	विवेकसिन्धु १६
मुहम्मद हुसेनी २२, ३५	विष्णुवर्धन (चालुक्य) २१
मुहिव ३८	विष्णुवर्धन (पल्लव) २१
मुहीउद्दीन कादिरि (डा०) 'जोर', ४३, ४४, ५३, ८८	शंकराचार्य २७
मोजज़ह १४	शबिस्ताने खयाल ८५
मौलाना अब्दुल्ला ८५	शरहतमहीद हमदानी ८७
मौ० रूम १४	शिव १६
मौ० सुलेमान नदवी, ४०	शाह वलीउल्ला कादिरि ८७
राजराज २१	शाह मीरांजी ३६
राजशेखर २३	शिष्टपालवध १८
रामचरितं २१	शुमायलुल-इत्किया ८७
रामायण ५३	शेख अब्दुल कादिर जीलानी, ३६
'रामायण में संज्ञा रूप' ५३	शेख निज़ामुद्दीन ३०
रिमाला सेहवारा ३५	शेखराचार्य ३२
रुस्तमी १५, ३६, ६०	शेख शकरगंजी फ़रीदुद्दीन ३१, ३६
लाला मोहनलाल 'मेहताब' ३७	शेख शरफ़ुद्दीन वू अली क़लन्दर ३१
लाला लख्मिनारायण 'शफ़ीक' ३७	श्रीराम २१
लौलाचरित १८	श्रीविजय २१
लोकपाल २१	श्रीहर्ष २३
वजदी ३६	सनाती ३६
वजही १५, ३६, ३६, ८८	मचरम १४, ४४, ६८, ६६, ८५, ८६
वज़नन्दि २०	सिद्धान्तसूत्रपाठ १८
वख़रेलाकर ३२	सुल्तान अहमद शाह तृतीय ३६
वली, औरंगाबादी कवि ३६, ३७, ६८, ८२, ८३, ८४	सुल्तान इब्राहीम ३०
वलो बेलूरी ३६, ६०	सुल्तान फ़ोरोज़शाह बहमनी ३५
वार्करी पन्थ १७, १८	सुल्तानुल औलिया ३३
विट्टल १७	संवक ३६, ६०
विमल २१	सैफ़ुल्मलूक बदीउज्जमाल ४४
	सैफ़ुल्मलूक व बदीउज्जमाल, ६८, ८८

सैयद युसुफ़ ३५
 स्कंदगुप्त २४
 हफ़ीज़ ३७
 हरि १७
 हर्षचरित २५
 हर्षवर्षन २३
 हलम ३८

हस्तमसायल ८७
 हाशिमी ८८
 हिंदुस्तानी फ़ोनेटिक्स ४३
 हिंदुस्तानी लिखानियात ४४
 हिदायतनामा ३५
 हिदायते हिन्दी १५
 हुसुनोदिल ८५

अनुक्रमणी

ख

अँविवॉ ४८, ५५
 अँखियाँसी ४८
 अंगन ७३
 अंगारयो ४८
 अंगे ६५
 अँभू ७७
 अँतर ५६, ७३
 अँदेशा ७०
 अँधारा ७४
 अँधारे ६२
 अँधेरी ८३
 अँपढ़ना ७७
 अँपाढ़ना ७७
 अँबर ७३
 अ ४३
 अकल ४८, ५४, ५६

अखण्ड ७३, ७७
 अखल ७०
 अगर ४८, ६०, ६२, ६३, ८२
 अगला ७५
 अगिन ७५
 अन्चर ७५
 अन्कर ७५
 अच ६१
 अचत ६१
 अचते ६१
 अचल ७३
 अछ ६१, ६३
 अछता ६१
 अछता है ६१
 अछती ६१
 अछते हैं ६१

अक्षना ६१
 अक्षरी ७४
 अक्षते ५६, ६१
 अक्षी ६१
 अक्ष् ५५, ५१
 अक्षेगा ४८
 अक्षेना ६१
 अक्षो ६१
 अजनवी ४४
 अजब ४७, ५५, ७१
 अङनांव ७७
 अङवाट ७७
 अङ्गाई ६८
 अङ्या ६१
 अया ४५, ६१
 अयी ६१
 अये ६१
 अदब ४८, ८६
 अदम ५४
 अदमी ४४, ७०
 अदरमान ७४
 अदा १५
 अदि ४६
 अदिक ७४
 अदिल ७४
 अबर ७३
 अघार ४८
 अधिक ७४
 अनंत ७३
 अनाचती ७७

अन्मनाना ७४
 अपंन ७७
 अपक्षरी ७४
 अपटना ७०
 अपना ४८, ५७, ५८, ५६, ८४
 अपनियौ ४७
 अपनी २६, ५०, ५३, ५५
 अपने ३३, ५८
 अपन्यां ४८, ५०
 अपरूप ७३
 अपस ५०, ५४, ८६
 अपसको ८६
 अपसे ५०
 अपाङना ७७
 अपार ७३
 अपै ५०
 अपे ४७, ५०
 अफजा ८३
 अब ५८
 अबूझ ७५
 अभाल ७४
 अभत ७४
 अघ्रीत ७४
 अरडावना ७७
 अरत ७५
 अरवी ४४, ८७
 अरे ८३
 अलफाज ६८, ८७
 अलक ७४
 अलविदा ७१

अलावा ४४	आघार ६८, ७३
अली ६४	आन १४
अवकल ७४	आप ५०
अवतार ७३	आपने ५०
अवासवा ७७	आप ही ५२
अव्वल ५६	आपस ५०
असक्रिया ३१	आपी ५३
असील ५८	आपी ५०, ५२, ५३
अस्तोत ७४	आब ८२
अस्मान ४४	आम ६१
अहै ६१	आमद ४०
अहै ५५, ६१	आयकर ५६
अहै है ६१	आयाँ ५७
-आँ ४६, ४७, ४८	आया ४६, ५७, ६१
आँ ६४	आये ४६
आँलें ८३	आये हैं ६१
आँव ७४	आरायश ५७
आ ४७, ५७	आरिफाँ ५६
आ ४२, ६६	आरुस ७०
आकिल ६२	आला ६६
आकिलाँ ५६	आवना ६०
आखिर ५७	आवाज़ ४८, ८३
आग ८३	आवे ५३
आगें के ६३	आशनाई ४८
आलें ५३	आशिक ६४
आज ४७, ६१, ८७	आशिक ८२
आट ७७	आस ८६
आटा ७७	आसान १४
आता ४५, ८१, ८३	आसी ५६
आदि ७३	आस्मान ५६

—ई ५६	उट ४५, ५८
इ ४३	उठ ३१
इषर ५०	उठी ८६
इन्साफ़ ४४	उतर ५६
इन २६, ३३, ५५, ५७	उतराई ७५
इनके २६	उतारू ७६
इनाम ७०	उत्तम ७३
इने ५०, ५१	उधान ७७
इनादत ६१	उघर ५०
इमारत ४८	उन ४०, ६२
इलाल ५०	उनन ५०, ५५
इस्कू ३१, ४७, ४८, ५७, ५८, ८३, ६२	उनने ५७
इस्म ४६	उने ५०, ८६
इस १४, १५, ५३, ५४, ५६, ६३, ८३, ८६, ८७	उनों ४६, ४७, ५०, ५४, ५५, ५७
इसका ४४, ८७	उपकार ७३
इसकी ८७	उपचार ७३
इसको १४, ८३	उपर १४, ५५
इसमें ८७	उपराल ५५, ५७
इसलिए २६, ४४	उपासी ७५
इसी २६	उभाल ७७
इसे १४, १५, ५०, ६१	उमस ७५
—ई ५२	उम्र ४८, ८३
ई ४३	उरगन ७४
ईमान ५८	उर्दू ४०, ४४
ईसा ५६	उर्दूदां ४४
उ ४२, ४४	उलासा ७४
उचाकर ६३	उल्लेठ ४६
उचाना ७३	उस्ता ७२
उजाला ६२	उस ४६, ५३, ५४, ५५, ५६, ८६
	उसका ४८, ५७, ६०

उसकी ६१	ऐतियाँ ४७, ४८, ५२
उसके ४७, ५७, ६४, ८६	ऐसी ३१
उसको ८६	ऐसे ५३
उसास ४४, ७५	-ओ ४८
उसीच ५३	ओ ४३, ४४
उसे ४६, ५०, ५६, ६१, ६२, ६८, ८४	ओ ४३, ४६, ५८
उसो ५०	ओ ४३
उसो ५०	ओघरम ७५
ऊँचा ६२	और १४, २६, ३१, ३३, ४०, ४४, ४८, ५०, ५१, ५६, ६४, ६८, ८१, ८७
ऊ ४३	औरतां ४७, ४८, ५८, ६४
ऊकल ७४	ओलखन ७४
-ऐ ४७, ४८	ऊँया ७६
ऐ ४३	कैवल ८२
-इ ४७, ४८	कैवल ७६
ए ४३, ५०	क ४४
एक ४७, ५०, ५२, ५८, ५६, ६० ६१, ६८, ८३	क ४४, ४५
एकस ५२	कहूँ ६२, ६४
एग्यारह ५२	कड़ाई ४६
एता ८६	कता ४६
एतियाँ ४७, ५२	कता है ४६
एते ४७, ५२	कती ४७
एत्याँ ४७, ५०	कते ४६
एन्ही १४	कते हैं ४६
एलाह ७८	कयई ८१
-ऐ ४७	कदम ५६, ८६
ऐ ४३, ८३, ८६	कदर ८७
ऐन ६६	कदासी ८६
ऐव १४	कदीम ८७

कबी ३१	कहवाते ६१
कनें ६४	कहाँ ८६
कबूतर ८३	कहा ५३, ६२
कबूल ५६, ७१	कहाते हैं ६८
कया ४६	कहे ५६
क्याम ३३	कहे है ६१
कर १४, २१, ३३, ४६, ४८,	कहाँ ५८
५१, ५३, ५८, ५९, ६२,	कहाँ ५८
८३, ८६, ८९	कसा ५४, ५७, ५८
करता ८१	कुछ ५१
करते ४४	कौँद ७८
करते हैं ६८	का १५, २९, ३१, ४४, ४८, ५१,
करवों ५८	५३, ५५, ५६, ५८, ६८,
करन ५९	८१, ८२, ८३, ८४, ८९
करनहारें ६०	काकलोट ७८
करना ३१, ६८, ८९	काच ७३
करने ५४, ८१	काजल ८३
करती ५९	काङ्ू ४६
करी ५६, ८९	कान ८१
करें ५०, ५२, ५९	काफ़ ४४
कर्या ५७	काम २९, ४९, ५३, ५५, ५६, ६८, ८३
कला ७३, ७८	कामों ५४, ५७
कलाम ६८	कामिला ३३
कवन ५१	कायल ७०
कशत ७४	काल ६१, ७३
कस १५	कि ४०, ५५, ६१, ८२, ८७, ८९
—कह ४६	किताब ५९
कह ८९	किताब ही ५२
कहते ८४	किताबों ४७
कहने १४	किताबी ५२

कितेक ५२	कुलुफ ७१
किषर ६२	कुल्लियात ६८
किन ५१	कूच ५१
किनने ५१	के १५, २६, ३१, ३३, ४४, ४६,
किने ५१	४७, ४८, ५०, ५१, ५२,
किम् ६३	५४, ५५, ५७, ५९, ६२,
किया १४, १५, ५०, ५३, ५६,	६८, ८१, ८२, ८३, ८४,
५७, ८३	८७, ८९
किये ५३, ५६	केता ५२, ८९
किला ७१	केरा ५५, ६४
किस ५३, ५५, ५९	कंरी ५५, ६४
किसका ६०	केरे ५५
किसकी ५३	कैता १४
किसी ५१, ५३, ५४	कैते ५३
किसी के ५९	कैसा ५६
किसे ५१	कैसी ६३
किस्सए १४	कों १५, ४५, ४६, ४७, ४८, ५०,
किस्ता ७०	५३, ५४, ५५, ५८, ५९.
की १४, ३१, ३३, ४०, ४४, ४७,	६४, ८१, ८३
४८, ५०, ५१, ५३, ५५,	की १५, ३१, ४५, ४८, ५०, ५१,
५६, ६२, ६३, ६८, ८२, ८३	५३, ५४, ५५, ५६, ५७,
कीमत ८३	५८, ५९, ६२, ६३, ८२, ८९,
कुंतल ७३	कोइ १५, ५९, ६८
कुच ४५, ५१, ५६, ७३	कोई ३१, ४८, ५१, ५२, ५६,
कुछ ५०, ६२, ८०, ८९	५९, ६१, ६४, ८६, ८९
कुजल ७३	कोड ७८
कुजात ७४	कोन ५१
कुदरत ४८, ५१, ५५	क्याँ ४७, ५५
कुमरियाँ ५५	क्या ४९, ५०, ५१, ५६, ५९,
कुमलाते ४६	६३, ६८, ८२, ८९

न्यो ६१, ६१, ६३	लीचे ५७
कौलिबाँ ७८	.खुदा ३१, ४७, ४८, ५३, ५४,
ख ४४	५६, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२
ख ४५	.खुदाये ५८
खलीने ७१	.खुरदेशे ८२
खह्वाँ ५८	.खुरामान ५५
खद्दग ४८	.खुरा १४
खक्रा ७०	.खुरालखन ७३
खबर ४८	.खुगर ८४
खम ७६	.खुव ६१
खयाल ४९	खेल ५६
खयाली ५८	खेलनहार ४७, ६०
खर्चा जावेगा ७२	खेलौं ४७
खसालत ७२	खो ७९
खाक ३१	खोल १४, १५, ५४, ५८
खाकर ८१	खोले ४६, ५०, ५४
खाकी ५०, ५१	ख्वाब ४९
खागा ५८	गंभीर ७३
खाज ८७	गँवाई ५७
खातिर ४७, ४८, ५३, ५५	ग ४४
खार ७१	गई ४८, ५२, ८३
खाला ७०	गगन ७३
खालिक ५३	गज ७३
खाली ६२, ६४	गड्डा ४५
खास ५६, ६१	गमता ५८
खासा ७५	गमना ७६
खाहीनखाही ७१	गमात्यां ५८
खिला ८२	गमना ७६
खिलाफ ५६, ६३	गथा ४०, ५७
खीच ४८	गबा है ६२

गर ३१, ६१	गोश ३१
गरीब ३३	ग्यान १४, ५५
गर्चे ६१	घांस ७६
गवालियर ४६	घड़ी ३१
गवाहदार ३१	घड़ी करना ७४
गवासी ६८	घन ७३
-गा ५८, ६४	घर ४८, ५०, ५७, ६३, ८३
गोंडू ४५	घरघालू ७६
गार्फिल ६३	घरदार ७६
गाय ३१	घरवार ६८
गालिबॉ ५८	घरे ४८
गिला ८६	घरो २६
-गो ५८, ६४	घावरा ७५
गीरी ३१	घायल ५०
गुंघो ४४	घाली ५७
गुन ४६, ५०, ८६	घिउ ७४
गुनकारों ४७, ५६	घूँड़ते ४५
गुनह ५६	बोल १४
गुनाह ५८	बंचल ८३
गुनाहां ५७	बेंदरमों ८६
गुमना ७२	बेंधोरी ७६
गुरों ४६	-ब ४३
गुलबाड़ी ७३	बकमक ७१
गुला ४५	बकोर ८२
गुलाकर १४, ८६	बल १४
गुस्ते ८३	बड़ ४६
गूक ३१	बड़ बड़ ४६
गैब ४७	बड़ने ६२
गैर ५४, ५६	बागुर ७३
गोई ८४	बल्वा ५६

चल ४७, ५६
 चलकर ८३
 चलना ३१
 चलने ५३, ६०
 चलसे ५६
 चली ८६
 चरम ४८
 चौद ८२
 चा ५३
 चाक ४५
 चाकरी ५५
 चाड़ ७८
 चातुरी ४३
 चार ६३, ५०
 चारा ३१
 चारों ५८
 चाल ८३
 चाले ५२
 चाव ४८
 चावे ६२
 चितरना ७६
 चितारा ७४
 चिनगी ७५
 चीन्त्या ५७, ७६
 चुजा ४५
 चुलबुलाने ६०
 चू कि २६
 चूना ८१
 चूला ७४
 चौड़ ७८

चोयाँ ३१
 चोर ४६
 छ ५३
 छन्द ७३, ७४
 छन्दों १४, ८६
 छत्र ७५
 छल ७३
 छल्ले ४५
 छाच ४५
 छाती ८३
 छिनाल ५७
 छिगावे ५०
 छुडाती ८३
 छुपाने ५३
 छुप्याँ ४७
 छुरियाँ ४८
 छोड़के ३१
 जंजाली ८१
 ज ४४
 ज ४६, ५२
 जम ६१
 जगावना ७४
 जन्माँ ४८, ५२
 जनावर ७१
 जक्रापुर ८६
 जर्नो १४, ५४
 ज़बान १४, ८६, ८७
 जम ७६
 जमात ७१
 जने ६१

जमाने ५६
 जमीन ५६
 जुरा ६४
 जुरर को ५४
 जुरर ५४, ६४
 जुररत १४
 जुररत ४८
 जुरर से ६४
 जुरोषी ५६
 जुरा ६४
 जल ८६
 जलजल ८३
 जलते ८३
 जलाती ८३
 जली ३१
 जले ६३
 जहाँ ५८
 जहान ८६
 जहार ७२
 जहालत ५४
 जहालत को ५४
 जाँ ८१
 जा ८३
 जाएँ ३१
 जाके ८६
 जागता ८२
 जागा ४८, ५०, ५१, ७१
 जाटा ४४, ५८, ६२
 जावा है ६२
 जाने हैं ६८

जाने ६३
 जान्थों ५८
 जान्या ५७
 जानती हूँ ६०
 जानिब ३३
 जाने ५०, ५६, ५६, ८६
 जानेंगे ६३
 जाब ७१
 जायेंगे ३१
 जाय ५६
 जायगा ५८
 जायगी ५६
 जाया ७१
 जायेंगा ५८
 जारी ८२
 जालना ७४
 जावते ५८
 जावना ६०
 जावने ६०
 जासो ५६
 जाहिलों ४७
 जिस ५४
 जिउ ७४
 जिउते ५८
 जिउ ७२
 जितना ५१
 जितनी ५१
 जितने ५१
 जिते ५२, ५६
 जिन्दगानी ७१

जिन्ह ५३	जोगी ८३
जिने ५०	जोहे ६१
जिनो ४७	ज्यादा ६३, ८७
जिनो ५०	ज्यो ४४, ६२
जिबे ७१	ज्योती ५०
जिस ५३, ५५	भगइत्यो ५८
जिसकी ४८	भइी ८२
जिबके ८१	भर ७४
जिसमें ४४	भल ७८
जिसे ५०, ५६, ६२	भाँप ७८
जीउना ७६	भाइ ७८
जीता ५६, ६१	भाल ७८
जीना ८६	भिइक ८६
जीब ४६	भूख्यो ४७
जीब ५६	ठलना ३१
जीवो ४७	टुक ८३
जु ५१	टेसन ८०
जुज ३१	टेसनि ८०
जुइयो ५७	टेसनिन ८०
जुदा ५३	टेसनिया ८०
जेकर १४	टेसनी ८०
जेती ५२	टेसने ८०
जेते ४७, ५६	ठहार ७८
जैत्यो ४७	ठार ४७, ४८, ५६, ६१, ७८
जैसियाँ ५२	ठारें ४८
जो ५८	ठाष ४८
जो १४, १५, ३१, ४०, ४५,	ठावें ४८
४८, ५०, ५१, ५५, ५६,	ठावे ४८
५७, ६१, ६२, ६८, ८४	ठैरते ४६
मोगिन ६८	डराए ५६

डरालू ७६
 डल्ली ४५
 डीग ७६
 डोवा ७६
 दंगाँ ४७
 —त ५८
 तअल्लुक ४४
 तई ५५
 तई ५५, ८६
 तकरीर १४
 तकलीन २६
 तकवीर ५७
 तगादा ६६
 तगादा ८०
 तगैयुरात ८०
 तत्ता ७४
 तन ३१, ८३
 तनासुव ६८
 तसते ५०
 तफसील ५३
 तब ५२, ५४
 तरफ ५८, ८३
 तरसते ५०
 तरह ४४
 तर्जुमा १५
 तलब ८७
 तलफुज ४४
 तलबथाँ में ४८
 तलासना ७२
 तल्ला ४५

तसलीम ५६
 ताँटा ४५
 —ता ५१, ५८
 ताला ५८
 तालीम २६
 तिगुंन ५२, ७४
 तिलोक ७४
 तिल ३१
 तिलमिली ८६
 तिस ५३, ८३
 तिसपर ५०
 तिसरे ५२
 —ती ५१
 तीनों ५२
 तुं ५८, ६१
 तें ५७, ५८, ६३, ८६
 तु ६०
 तुल ४५, ४६, ५२, ८६
 तुजको ४५
 तुजे ४६, ६२, ८६
 तुफ ४६, ८१
 तुटे ४५
 तुम ६१
 तुमन ४६
 तुमन बिन ४६
 तुमना ४६
 तुमरे ४६
 तुमारी ४६
 तुभी ५३
 तुरंग ७३

तुलक ८६	दक्खिनी ४४
तुही ५३, ६१	दखिन १५
तू ५६, ६१, ६३	दखिनी १५
तूँ १४, १५, ४५, ४८, ५३, ५७, ६०, ८६	दगा ६१
तू ५६	दङ्गी मारना ७८
तूज ४६	दफ्फे ७०
तूही ५३	दवटना ४५
-ते ५१	दबीर १५
ते ४४, ४६, ५०, ५३, ५४, ५६, ६३, ६६, ८६	दम ५३
तेज ७३	दया ७४
तेडीज ४५	दर १४
तेतियाँ ५२	दरसनी ७४
तेती ५२	दर्स ८३
तेरा ५६, ५७, ८६	दर्शन ८३
तेरी ५१, ८३, ८६	दल ७३
तेरे ४६, ५५, ८१	दवा ४८
तेरालू ७६	दाट ४५, ७८
तो १४, ५६, ५७, ६०, ६२, ८२	दाद ४८
ताङ्गा ८६	दानायौं ४७
तोय ६६	दानिशमन्दौं ४७
थंडी ४५	दानी ७३
था १४, २६, ३१, ४८, ६४, ८४	दायम ५८, ८३
थी ५६	दार ७४
थे २६, ५४	दारी ८२
थोङ्गे १६	दावन ७०
थ्यौं ४७, ५७, ६१	दावा ७०
डंडल ४५	दिई ५७
दकिन ३३, ८४	दिककत ६६
	दिककत ८७
	दिककद ६६

दिक ६३, ७३	दुगुन ५२
दिललाता ६१	दुनिया ४८
दिल्लार्थिंगा ५८	दुसरा ५२
दिल्लालावे ५३	दूजा ५२
दिखाती ८३	दूद ४६
दिखाना १४	दूर ८६
दिनरात ६१	दूसरा ६४
दिपाना ७४	दूसरे ४४, ५८
दिया ५४, ५६, ५७	दे ५१, ६१, ८२
दिये ४८, ५६, ५६, ६४	देआंगी ५८
दिल १४, ३१, ४४, ५३, ५४, ५५, ५६,	देक ४५
५८, ६२, ८१, ८२, ८३, ८६	देखत ५८
दिलपज़ीर १५	देखता ५८
दिल पीछे ५३	देखते ५३
दिलकरी ८६	देखने ४८
दिवा ७४	देखलाता ६१
दिवाकर ७४	देखलाना ५८
दिवाना ८६	देखी ५६
दिवाने ८६	देखे ४६, ५०
दिशत ७४	देख्या ४५, ५०, ५७, ५८, ५६
दिसना ७६	देते ४७
दिसै ८१	देना ५६
दीलें १४	देवन ५६
दीदयाँ कों ४८	देवा ८६
दीन ५८	देस ६३, ७६
दीवा ७४	देह ७३
दुंदियाँ ४८	दो ५०, ५२, ५८, ६१
दुंबी ५३, ७४	दोआवः ४४
दुफाल ७४	दोह ५२
दुख ६८	दोई ५०

दोनो ५२, ५५	दरे, ६४, ८६
दोनो ५२	नईं ३१
दोय ५२	नईं ३१
दोस्तदारों ४७	नको ६३, ८६
दोस्तां ४७, ५४	नज़र ५६, ७१
दौड़ाए ५६	नज़िक ८१, ८६
दौड़या ५७	नज़ीक ७१
धनियारा ७८	नक़म १४, ८६
धनी ५६, ७३	नन्हवाद ७६
धरत ७४	नफ़ा ५७, ६६, ७०
धरती ५६, ७४	नबतर ७८
धरम ८३	नवद ५२
धरया ५६	नबी ५६
धरित्री ७३, ७४	नबूअत ८२
धरूया ५७, ८६	नवल ७५
धाड़ ७८	नवा ७५
धात १५, ५४, ७४	नवाज़ना ७२
धाना ७४	नवाना ७४
धावे ४८	नवी ७५
धीक ७५	नस १४, ८६
धीर ७३	नहीं १४, ४४, ४५, ५३, ५५, ६१,
धुंडने ६२	८३, ८४, ८६, ८६
धुंडाने ४५	नाँव ४८
धेर ७६	नाँव ५२
धोने ३१	नाँव ४८
धोया ५७	-ना ५१, ५६
नं ५३	ना ३१, ४८, ५१, ५३, ५६,
नँह ७४	६३, ६४
-न ४६, ५६	नाग ५४
न १४, ३१, ५०, ५६, ५८, ५६,	नाज़ ८३

नाजूक ७१	नी ५२
नाम ४०	न्यामताँ ४७
नामा ७१	न्यारा है ३१
नारी ७३	—ह ४६
नाव ४८	न्हनपन ७५
निकलधूँ ५८	न्हाटना ७५
निकले ६३	न्हासना ७५
निम्नाई ५७	पंजाब ४४
निम्नाना ७७	पंत ७४
नित ७४	पकड़ा ८३
निपचाना ७६	पचीस ५२
निरासा ७४	पट्टा ४४
निरासी ८६	पड़ता है ६८
निर्जीव ७४	पढ़ने ४६
निर्मोल ७४	पड़ ८३
निहायत ५४	पड़ेगा ४६
—नी ५१	पढ़याँ ५८
नी ५४	पढ़ने ५३
नीट ७६	पत ७४
नीहचल ७५	पतियारा ७४
नुख ७१	पर ४८, ५०, ५२, ५३, ५५, ५६,
नुपचाना ७६	८४, ८६
—ने ६०	परकाज ७४
ने १४, ४७, ५४, ५६, ५७, ६०, ८३	परते ७४
नेकी ५०, ५६	परदल ७४
नेमधरम ७४	परदुख ७४
ने १४, १५, ४४, ५२, ५३, ५४,	परधान ७५
५६, ६२, ६३, ६४, ८१	परमेश ७३
नैन ३१, ८१	परविभंजन ७४
नैना ८२	परसाद १४

परस्तिश ८३	पिचें ४५
परी ५६, ८६	पिनाना ४६
परेशानगी ७१	पिया ५४
पलंग ४८	पिरीत ४८
पवन ७३	पिलान ५६
पहचांत्वाँ ५८	पी ६२, ६८
पहचान्या ५७	पीछे ५३
पहिराना ७४	पीता ५५
पहुँच ३३	पीर ३१
पाँए ६८	पीचे ६८
पाँव ५०, ८३	पुंजत्ते ५६
पाएँ ३१	पुकार ६३
पाक ५६	पुस्ता ७०
पाच ७६	पुजनहारी ८३
पाडना ७६	पुजाती ८३
पादशाही ५४	पुठ्ठा ४४
पान ५६, ५८, ६४, ८१	पुन १४, ७५
पानी ५६, ६८, ८३	पुरगम ७०
पाने ४८	पुरुष ७३
पाप ४६	पूक ३१
पायक ७५	पूच ४५
पाया ५६, ६२	पूळ्या ५७
पायें ४७	पेखना ७५
पाये ५१	पेलाड ७८
पारकी ४५	पेशरू ३१
पास ४८, ५२	पेछान ४६, ४७
पावां ५५	पैदा ५६, ६०
पास ५३	पैदायश ६०
पिड ५३	पैदा किया ६०
पिगले ४५	पैनना ४६

पैसना ७५	बगर ७०
पो ५५, ५६	बगैर ५८, ५९
पौलाद ७२	बजाय ८७
प्रीत ६८	बजीद ७०
पंखड़ियाँ ४६	बड़ा ६२
फ़ ४४	बड़ाई ४६
फ़तवा ७०	बड़े ३१, ४८
फ़र्माई ५०	बढ़ाई ७५
फ़र्माया ३३	बतियाँ ४८
फ़र्माये ५६, ५७	बदख़ ७१
फ़र्ष १४	बन ५४
फ़ामना ७२	बनाती ८३
फ़ायदे ५५	बनेछ ५३
फ़ारसी १४, ४७, ६८, ८७	बरसत्यां ५८
फ़िक्का ४५	बरी ६३
फ़िक़र ४८	बलक ७१
फ़िक़रवन्द ७०	बलवलिया ७९
फ़िर ८९	बहलाने ५३
फ़ीरोज़ ६१	बहलाने खातिर ५३
फ़ेलांच ५३	बहाया ४८
फ़ोकट ७५	बहार ६३
चंद्याँ ४८	बहुत ५५
चंदौं ४७, ४८	बहुते ५३
बकरीद ६९	बहोत ४७, ५६, ६४
बकरीद ६९, ८०	बांद कर ४६
बख़त ४४	बाई ७५
बख़शायगा ७२	बाउ ७५
बख़शी ५७	बाग़ ८२
बख़ान १४	बाज़ा १४
बख़त ७१	बाज ६४

बाज़ियाँ ४८	बुरे ५३, ६१
बाज़े ४७, ७३	बुलबुल १४
बाट ५६, ७५	बुलबुलाँ ५८
बाट-पाइ ७५	बुलाय ५६, ५९
बाट-सार ७५	बुलाया ५७
बाटों ४७	बुलाये ६४
बाढ़ा ७५	बूट ७९
बात १५, ४६, ४८, ५०, ५३, ५४, ५५, ५६, ६३	बेकटर ७९
बातों १५, ४७, ५५	बेकड़ ७९
बांद ४६	बेगि ७५
बादशाह ४८, ५४	बेगी ७५
बार ८३	बेटी ५१
बाला ८१	बेडौल ८९
बाली ८१	बेपरवाई ५८
बाब ७५	बेरां ७६
बाशिन्दः ८४	बेराज़ ६४
बिचढ़ावे ४५, ४८	बेहतर ६३
बिचारा ७१	बैठ ३१
बिछुवों ८३	बैलाँ ३१
बिन ४९, ८९	बैसना ७५
बिना ६४	बैसला ५७
बिरह ८२	बैसियां ४७
बिसरात ७५	बोल १४, १५, ५०, ८९
बिसलाना ७५	बोलचाल २९
बी ४६, ५६	बोलने ४४, ५०
बुज़ुर्गों २३, २९	बोला ४४
बुझाती ८३	बोली ४०
बुत ८३	बोलूँ १४
बुनी ४८	बोले ४६, ४७, ५४
	बोलों १४, ५३

भरी ८३, ८६	मंथिर ७५
भरे ४४, ६२	मँह ५५
भर्या ५७	-म ४६
भला ५३	मकतल १४
भांती ५३	मल्ली ८६
भाता ५८	मजाल ५३, ६०
भाती ५३	मत ८३
भान ७५	मतना ७५
भानु ७३	मतलब २६
भाया ४७	मदद ३१
भार ४४	मदह ८२
भाव ७३, ८३	मदाह ५३
भावता ५८	मनसा ७१
भिम्राव ७५	मनहर ७५
भिगना ४४	मना ५३, ७१
भी २६, ३१, ४६, ५०, ५४, ६०, ६२	मने ५०, ५५
भुअंक ७५	मय ५५
भुअग ७५	मया ७५
भुई ५५, ७५	मरद ५७, ५८, ६४
भुलासी ५६	मरैगे ३१
भूल ८३	मर्द ५५, ६२
भैल ५७	मशारे ७२
भेदना ७६	मसनवी ६८
भेद्या ५७	महताब ५७
भोजन ६८	महमूद ६१
भोर ३१	महि ५५
भौत ६१	माक ७८
भंमता है ६२	माकल ५४
भंगने ५३	माटी ७५
भंग्या ६२	मान ६४, ७३

माना ७७	मुज ४५
मानी १४	मुजको ४५, ४६
मामला ६२	मुजे ८६
मारने ५३	मुक ५७, ८३
मारी ५७	मुकको ८१
माखुम ४०	मुक्रीद २६
मावों ४८	मुमताल ४०
माशक ८०, ८४	मुरक ८६
मास ७३	मुशिद ३३
मिठी १५	मुलम्मा ७१
मिठे ५०	मुलाज़ा ७०
मियाने ५५	मुलाथक ७३
मित्थों ४८	मुदिकल ४८, ८७
मिलकर ६१	मुस्ताक ८३
मिल को ५६	मुसल्मान ६१
मिलता ३१	मुसल्मानों ४८
मिलने ५३	मुसल्मानों में ६२
मिला १४, ८६	मुसलमानों ४०
मिला के ५६	मुजों ४६
मिले ५४	मुहन्बत ६२
मीठी ५४	मुँही ७५
मुँज ५५, ५६	मूप ७८
मजे ४५, ४६, ५१, ८६	मूरक ४५
मैक १४	मूरतियाँ ४७, ५०
मुँह ५३	में १४, १५, २६, ३१, ३३, ४०,
मु ४६	४४, ४८, ४९, ५०, ५४,
मुए ८६	५५, ५८, ५९, ६१, ६२,
मुफामात ४४	६८, ८१, ८२, ८३, ८६,
मुफामा ४०	८६
मुस ५७, ८३	मेरा ५७, ८३

मेरी ५५, ८३, ८६	याँ ५६, ५८
मेरे ५६, ६३	-या ५७
मेलजोल ४०	या ५३, ६१
मेलानी ५८	याद ३१
मेहर ८३	यादगार ४८, ५३
मेहरबाँ ५४	यार ५३
मेहरवान ७१	यारों ४७
मैं १४, ४६, ५२, ५६, ५७, ६०,	यूँ ८६
६३, ८६	यूँही ८४
मों ५८	यू १५
मोछियाँ ५५	ये ५०
मोज़ेज़ह १५	येता ५२
मोती ४४	-यों ४८
मोहन ८३	यों १४, ४६, ४७, ५०, ५३, ५६,
मोहब्बत ५१	६०, ६१, ६२, ८६
मौजूँ १४	यो ५०, ५३, ५५, ५६, ५७, ६१
म्याने मने ७५	रंगों ४७, ५१
-म्ह ४६	रंजानते ७२
म्हाड़ी ७५	रकते ४५
य १४	रक्खा ४०
यकंग ७५	रख ८२
यक १४, ३१, ४५, ४८, ५२, ५५	रखता ६२
यकायक ५३, ६०	रख्यां ४८
बदी ७५	रख्या ४८, ५७
यहँ ५६	रगत ७५
यह १४, २६, ४०, ४४, ५०, ७१,	रत्ने ६१
८१, ८३	रत्नीगा ६१
यहाँ ३३, ५३	रब्ब्या ६१
बही ६८	रज़ ७५
-याँ ४७, ४८	रतन ६१

रनखाम ७५
 रघ्नत ४०
 रघुञ्ज ३१
 रवाञ्ज २६
 रवाना ३३
 रवीश ७२
 रश्क ५३
 रसरी ७५
 रह ६१
 रहना ३१
 रहसे५८
 राकस ७५
 राखें १४
 राख्या ५०
 राज ५५
 रात ४८
 राताँ ८२
 राते ४८
 राते रात ४८
 रानवाँ ७८
 राम ८६
 राय ५६
 रायको ५६
 रावाँ ७८
 रास ७६
 रीच ७५
 रीज ७५
 रीश ३१
 रीस ७६
 रुच ७५

रुद्ध ७५
 रुस ७५
 रुत ७५
 रेखतः ८४
 रेल-छेल ७५
 रैन ३१, ७५, ८३
 रोजौट ७८
 रोमावलि ७३
 रोय ३१
 रोलना ७६
 रोशनी ८३
 रोज़ा ३३
 लग्या ५७, ६२
 लगन ४७, ८६
 लगा १४, ५६
 लगाती ८३
 लगी ५०
 लजीज़ ५३
 लट ८३
 लइत्यां ५८
 लत ७६
 लताफ़त १४, ५४, ८६, ८६
 लबालब ६४
 लह ५६
 लहुवा ७८
 लाइया ५७
 लाफ ४५
 लाना ७६
 लाने ३१
 लाया ५७

लाये ८४
 लालन ८०
 लावती ५८
 लावते ५८
 लिखी १४
 लिया ८३
 लिये ४४
 लुन्दाइया ७५
 लुहाटी ७६
 लुइना ७६
 लेकर ६१
 लेकिन ४०
 लोको ५६
 लेते २६
 लेनहार ६०
 लेसूँ ५८
 ले जाऊँ ६३
 लै ६१
 लैला ५३
 लोकाँ ४७
 लोम ५६, ६१
 लोइती ६२
 लीन ८०
 ल्भाने ६०
 ल्भायकर ५६
 ल्भायगा ५८
 ल्भाया ५७
 व २६, ४०, ५८
 वई ८६
 वक्त ४४, ५८, ५६

बहूत ४४, ७१
 बज्जा ५६, ५६, ६६
 बर ७३
 बरम् ६३
 बरां ७६
 बर्ज—६४
 बली ५६, ८४
 बलो ४७
 बस्ताद ७१
 बस्तु ७३
 बह २६, ४६, ५७
 बहा ५६, ६४
 बही ८६
 बाका ६६
 बाकिफ़ ८३
 बाखा ६६
 वादी ७३
 वालो ४४
 बासलों ३१
 बासिल ३१
 बासिलों ४०, ५४
 बास्ते १४
 विचारूया ५७
 विचित्र ७५
 विते ५२
 विदा ७१
 बिघना ३१
 विरागी ६८
 विलासत ४४
 वै ५८

बेल्वाँ ५७	सकता है ६०
बैलियाँ ४७	सकारे ३१
बो ४४, ४८, ४९, ५०, ५६, ६२, ८२	सकेगा ५८, ६०
शक ५८	सख्खुन ८४
शय ५५	सगट ७६
शरमँदा ७२	सजन ३२
शरम ४८	सजान ७६
शराब ४८, ४९, ६२	सती ५४
शाहनाई ७१	सते ५४
शालीर ७२	सदा ६१
शाद ३१, ५१	सन्मुख ७३
शाह १४	सपढ़ना ७६
शाहपरियाँ ४७	सफ़ा ७२
शुजाअत ५७	सफ़ाई ५६
शुरू ५३	सब १४, ४४, ४७, ५०, ५१, ५३, ५४, ५५, ५८, ६४, ८३
शेर ६१	सबका ४०
शैतान ८४	सबब ८२
शोले ८३	सबरस ५३
शौ ७२	सबलत ३१
शौक ४४	सबूरी ७१
शौख ४४	सभी ५२
संग ४९	सभी ५१, ५२, ५६
संग्राम ७४	सम ७४
संचाती ७५	समकबा ५०
सँभाल ४८	समज ४५, ८९
संभोग ७४	समजता ६२
संसार ६८	समझते ४७, ५०
—स ५८	समझाई ५६
सकत ७६	समझी ५४
सकता ६०	

समझे ६४	सिर ६०
समझेगा ४५	सिख्या ५७
समझना ८७	—सी ६४
समझा १५	सीता ८६
समझे १४	सीनः ८२
समों ४८	सीन ६६
समुद्र ७५	सीने ५६
समुंदर ५५	सीपियाँ ४८
सरना ७६	सीस ७५, ७६
सराफ़राज़ ७२	सुंदर ८३
सशासत ५५	सुगते ४४
सवाद ५३	सुखर ७६
ससा ७५	सुबह ६१
सह्या ५७	सुद ४६
सही ४४, ५६, ७०	सुन ५६, ८२
साँदी ७६	सुनकर ५५
सा ५७	सुनते ५३
सात ४६, ५४, ७०	सुना ७५, ५६
साथ ३३	सुनाती ८३
सादना ७६	सुनावे ५३
सारना ७६	सुजा ४५
सारी ६८, ८३	सुजार ७५
सारयाँ १५	सुन्या ५०
साहब ५६	सुपारी ८३
साहब पास ५३	सुभा ७०
सिगार ५५	सुरंग ७४
सिंघार ७५	सुल ७६
सिजदा ५६	सुलगा ७४
सिफ़त ५२	सुवे ४०
सिफ़ात ५३	सुर ७३

खरत १४, ४८, ६२, ७१, ८३	हखरत ३३, ४७
खरतों ४७	हख ७१
खरतियाँ ५२	हत ७५
से २६, ३१, ३३, ४०, ५८, ६४, ६६	हत्ती ४५, ४६
सेत ५४	हम ४६, ६२, ८४
सेती १४, ५४	हमदुम होना ७७
सेक ७३	हमन ४६, ५०, ५८
सैंखार ७५	हमन को ४६
सो १४, ३१, ४८, ४६, ५०, ५४, ५६, ५६, ८३, ८६, ८६	हमन ते ४६, ५०
सो ४६, ५०, ५३, ५७, ५८, ६३, ६८, ८६	हमन संग ४६
सोती ६४	हमना ४६, ५०
सोय ५४	हमना उपर ४६
सौरात ७६	हमना ते ४६
सोरेज ७६	हमी ५८, ५३
सोलना ७७	हमेशा ८२
सौ ३३, ४८	हमै ५०, ४६
सौख ४४	हर १५, ३१, ४०, ५२, ५३, ५५, ५८
स्टेशंस ८०	हर्क ४४
स्टेशन ८०	हलासी ५६
स्वाद ७४	हवस ५३
हँकारना ७६	हस्त ७५
हँस ५८	हस्ति ७३
हँडी ७६	हस्न ८७
हँस पक्ष्यां ५८	हों ६२
-ह ४६	हॉक ६३
ह ६६	हात ४६
हक ५६	हाय ८१
हकीकत ४०, ४८	हाल ६३, ६८
	हालत ४८
	हालात ४८

हिंदवी १४	हो ३१, ४८, ५४, ६१
हिंदी १४, २६, ६८, ८६	हो अछेगा ६१,
हिंदुओं ४८	होकर १४, ५६, ६४
हिंदुओं में ४८	होता ३१, ५३, ५८
हिंदू ८६	होती ४०
हिंदोस्तान १४, ४४, ८६	होतें ५८
हिज़ ५६	होते ३१, ५१
हिम ७२	होना ८६
हिलता ६४	होना है ५०
हों ५३	होय ३१, ५०, ५३, ५६
हीं ५२, ५३	होय कर ५६
हुआ १४, ५६	होय को ५६
हुई ५८, ६८	होयसन ४७, ५६
हुए ४०, ४४	होवता ५८
हुकम ३३, ६४	होसी ५६
हुजूर ३१, ५६, ५६, ६४	होसे ५६
हुदगना ७७	हौर १५, ४६, ४७, ५१, ५८, ६१, ६४, ८६, ८६
हुनर ५६	हैं ४६, ४७, ५०, ५२, ५४, ५५, ५६, ५८, ६२, ८१, ८४, ८७
हुनर बन्द ७०	हैं ४०, ४४, ४७, ४८, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ६२, ६४, ८२, ८३, ८७
हुवा ८६	हेगी ५३, ६१
हुसै १४	हेरत ४४
हुसल ५६, ५८	हैरा ५८
हुं ५६, ५७, ८१, ८६	
हैदा ७६	
हेरना ७६	

वीर सेवा मन्दिर

पुस्तकालय

काल नं० ४०१ १
सर्व

लेखक समसेवा, जाबूर रात

शीर्षक दामिलजी हिन्दी

खण्ड १६६४
क्रम संख्या